भारतीय वाङ्मय

हिन्दी तथा अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के साहित्यिक-सांस्कृतिक समाचारों की मासिक पत्रिका

वर्ष 8 | **सितम्बर** 2007 | **अंक** 9

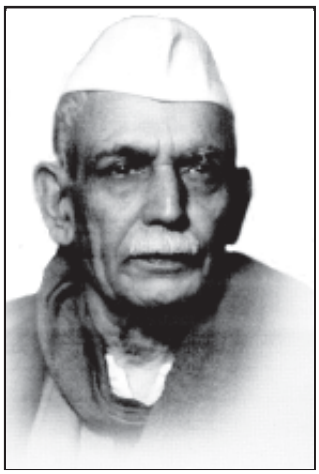

हम धीरे-धीरे बिना पढ़ने-लिखने वालों की कौम बनते जा रहे हैं। स्कूल में हों, कालेज में हों, नवजीवन के किसी क्षेत्र में हों, 'हमारा अधिकांश' पाठ्य-पुस्तकों को छोड़ दें तो प्राय: बिना पढ़े बोलता है और बिना अध्ययन किये अक्ल की खैरात बाँटता फिरता है।

लाचारी की तरह हम पर पड़ने वाली कुछ पुस्तकों को छोड़कर मानों हम कुछ पढ़ते ही नहीं; और कुछ लोग तो उन पुस्तकों को भी नहीं पढ़ते। तब क्लासरूम में नन्हें बच्चों के सामने विद्वत्ता बघारने वाले अध्यापक की तरह हम अपनी बुद्धि का प्रदर्शन जन-जीवन में किये क्यों जा रहे हैं?

मेरा निवेदन है कि हम पढ़ें, हम अध्ययन करें और बोली जाने वाली वाणी में अध्ययन-पूत प्रसाद ही अपनी पीढ़ी को प्रदान करें। यह न समझे कि केवल भाषा पर लिखे हुए ग्रन्थ ही इस देश की उन्नति कर ले जायँगे। भिन्न-भिन्न प्रकार के अध्ययनों, शोधों, आविष्कारों और इतिहासों तथा उद्योगों और कलाओं के ग्रन्थों के रचनाकारों को भी हम साहित्य के महान मन्दिर का अधिकारी समझें।

पैरों के ऊपर पेट भले हो, किन्तु पेट के ऊपर हृदय है, हृदय के ऊपर कण्ठ है और कण्ठ से परे मस्तिष्क है। क्या हृदय, कण्ठ और मस्तिष्क के बिना भी कोई जीवित रह सकता है?

—माखनलाल चतुर्वेदी

प्रेमचंद स्मृति संस्थान

31 अगस्त 2005 को प्रेमचंद की 125वीं जयन्ती मनाई गई। केन्द्र तथा उत्तर प्रदेश सरकार के अनेक नेता प्रेमचंद की जन्मभूमि लमही पधारे। दोनों सरकारों ने संयुक्त रूप से बड़े-बड़े वायदे किये। केन्द्र सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय समिति की संयोजिका एवं पूर्व राज्यसभा सांसद सरला माहेश्वरी के अनुसार प्रेमचंद के पैतृक गाँव लमही में प्रेमचंद स्मृति शोध संस्थान बनाने का निर्णय लिया गया था। किन्तु केन्द्रीय संस्कृति मंत्री अम्बिका सोनी को न इसकी चिन्ता रही न सुध। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री मुलायम सिंह भी सत्ता में नवजीवन प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते रहे। प्रेमचंद जयन्ती तो उस संघर्ष का एक लघु चरण था। करोड़ों की घोषणा हुई, कुछ बना कुछ अनबना रह गया। जबकि ढाई करोड़ रुपये खर्च हो गये। चुनाव के लिए भी तो फण्ड चाहिए उसमें ठीकेदारों का ही अंशदान विशेष होता है। अब सरकार नहीं रही तो बात गई सो बीत गई।

बहुजनकी प्रतिरूप सर्वजन की नई सरकार आई है, अभी उसे अपनों के हिसाब चुकाने हैं। प्रेमचंद अभी दूर हैं। प्रेमचंद संस्थान के लिए भूमि अधिगृहीत करनी है। एक एकड़ भूमि संस्थान के लिए अपर्याप्त है। क्या इन सब भौतिक तत्त्वों से ही निर्मित प्रेमचंद स्मारक में प्रेमचंद दिखाई देंगे। आज तक हमारे देश में किसी साहित्यकार का स्मारक अथवा स्मृति संस्थान बनाने का कोई प्रारूप नहीं बना और न पुरातत्वविदों की तरह साहित्यविदों की कोई टीम तैयार की गई। किसी साहित्यकार की स्मृति को साहित्यकार स्मृति संस्थान में किस रूप में प्रस्तुत किया जाना है, जिससे साहित्य प्रेमी जिज्ञासु, पर्यटक उस साहित्यकार की स्मृति को लेकर जायँ।

केन्द्र सरकार ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को तीन करोड़ की राशि संस्थान के लिए आवंटित की, पर यह राशि भी समाचारों में बनकर रह गई। इसके उपयोग की अभी कोई रूपरेखा भी नहीं है। प्रदेश के संस्कृति विभाग के सामंत संस्थान पर अपनी पकड़ बनाए रखना चाहते हैं। केन्द्र सरकार की अपनी दृष्टि है। इस प्रकार 2005 की घोषणाएँ 2007 में नये परिवेश में ध्वनित हो रही हैं। शनै:-शनै: यह ध्वनि 2008 तक मंद पड़ जायगी और पुन: 31 जुलाई 2008 को ढपोर शंख की तरह बजने लगेगी।

अक्षरों और शब्दों में सारी सृष्टि की रचना करने वालों, मनुष्य तथा प्रकृति के मनोभावों, विचारों, कल्पनाओं को कागज पर उतारनेवालों को काल के अतीत में दफन कर दिया जाता है, उस पर धूल डाल दी जाती है। राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए धूल झाड़-पोंछ कर समय-समय पर याद कर लिया जाता है।

कहते हैं साहित्य समाज का दर्पण है, किन्तु उस साहित्य को रचनेवाले साहित्यकार को हम किस दर्पण में देखते हैं? जिस तरह देवता का अभिशाप लगता है उसी तरह एक दिन साहित्य स्रष्टा का अभिशाप भी देश को, समाज को झेलना पड़ेगा।

8 अक्टूबर 1959 को नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के तत्त्वावधान में लमही ग्राम

शेष पृष्ठ 2 पर

पृष्ठ 1 का शेष

में प्रेमचंदजी के स्मारक भवन का शिलान्यास राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने कथाकार ताराशंकर वंद्योपाध्याय के सभापतित्व में किया था। उ०प्र० के मुख्यमंत्री डॉ० सम्पूर्णानंद ने समारोह का शुभारम्भ किया था। उस समय पं० गोविन्दवल्लभ पंत, सभा के सभापति थे, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी उप सभापति और डॉ० राजबली पाण्डेय प्रधानमंत्री। उनके बाद सभा के कितने पदाधिकारी आये और चले गये। धीरे-धीरे सभा पदाधिकारियों के राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा का माध्यम बन गई। कहा गया है 'बहता जल निर्मल'। इसके विपरीत पदाधिकारी पद पकड़ कर बैठ गये, नवीन प्रवाह का आना बन्द हो गया और सभा अपने साहित्यिक उद्देश्य से हट गई, परिणाम यह हुआ कि नागरी प्रचारिणी सभा भाषा तथा साहित्य प्रचारिणी सभा नहीं रही व्यक्ति प्रचारिणी सभा बन कर रह गई। इतने वर्षों में प्रेमचंद स्मारक भवन नहीं बन सका, किन्तु मंत्री स्मारक बन गया। यह देश की लगभग सभी साहित्यिक संस्थाओं की स्थिति है जो उन्नीसवीं शताब्दी में कितनी निष्ठा और त्याग से बनी थीं।

वर्तमान यह है कि राजनीति-ग्रसित इस देश में सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाएँ व्यक्ति की राजनीतिक महत्त्वकांक्षा का माध्यम बन जाती हैं। ऐसी स्थिति में साहित्य और साहित्यकार जो विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में जीवित हैं, उनसे संबद्ध विभागों को ऐसे स्मारकों का दायित्व सौंपना चाहिए ताकि साहित्यिक संवेदना के साथ ऐसी संस्थाएँ चलती रहें। प्रेमचंद, जयशंकरप्रसाद, महादेवी, निराला, सुमित्रानन्दन पंत, रामधारी सिंह दिनकर आदि को स्मरण कर नई पीढ़ी को संवेदनशील के साथ कर्मनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, विवेकनिष्ठ बनायें।

—पुरुषोत्तमदास मोदी

सहृदय पाठकों से निवेदन

आप कोई रचना पढ़ते हैं, आपको अच्छी लगती है, रचना और रचनाकार के प्रति संवेदनशील हो उठते हैं, तो उसके लेखक से पत्र द्वारा संवाद अवश्य कीजिए, लेखक कृत कृत्य होगा, उसे नई ऊर्जा मिलेगी। वह अनुभव करेगा कि उसकी रचना पाठकों तक पहुँच रही है, उसमें संवेदना जागृत कर रही है।

प्रेमचंद जयन्ती

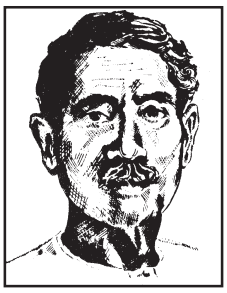

प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी'

31 जुलाई 2007, प्रेमचंदजी की जन्मभूमि और रचनाभूमि लमही, वाराणसी, प्रातः से साहित्यकार, अध्यापक, विद्यार्थी, प्रशंसक एकत्र होने शुरू हुए प्रेमचंद को, प्रेमचंद के कक्ष को देखने। वहाँ न प्रेमचंद दिखे, न उनका कक्ष। निर्मित कक्ष में ताला जड़ा था। सरकारी अधिकारी जो 125वीं जयन्ती के आरम्भ और 126वीं जयन्ती के निर्माण कार्यों के साक्षी थे वे भी औपचारिकता स्वरूप पहुँचे। पिछली सरकार ने जिस ठीकेदार को निर्माण कार्य दिया था, उसका भुगतान नहीं हुआ, अतः ताला लगाकर चंपत। राजनीतिक सरकारें बदलती हैं तो सारी दिशा बदल जाती है। प्रेमचंद जनता के अभिवक्ता हैं, अधिवक्ता हैं, शासन के नहीं किन्तु सरकारें उनका राजनीतिक प्रयोग बखूबी करती हैं। विगत दो वर्षों से यही होता रहा। जनता खूब समझती है, उसने सरकार बदल दी। नई सरकार अभी परिस्थिति का आकलन कर रही है। विकास की पिछली फाइलें अभी बन्द पड़ी हैं। दो बज चुका था। बहरहाल प्रेमचंद की संवेदना से जुड़े लोग प्रेमचंद के घर में प्रेमचंद की आत्मा को महसूस करने निकले थे, घर में ताला लगा देख, प्रेमचंद के पात्रों की तलाश में निकले। आज भी यहाँ की मिट्टी में कुछ कण बिखरे जरूर मिलेंगे।

और एक प्रेमचंद जयन्ती यह भी

प्रेमचंद-जयन्ती का फीका कार्यक्रम झपकियाँ ले रहा था। 'चन्दननगर' सबसे दलित बस्ती में, गन्दे नाले के पास टूटी-फूटी मड़ई या छपरी में दिखाई दी, एक बुढ़िया, लगता है यह प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' है। मड़ई के पास चमकती हुई कारें और प्रेमचंद की बूढ़ी काकी मुनारी देवी पत्नी स्वर्गीय मिठाईलाल गोड़ उम्र 80 वर्ष चारों ओर से घिर रहीं थीं। उन्हें कुछ पता नहीं था। पेड़ों के नीचे सूखे पत्ते बटोरकर गँवई तरीके से भाड़ झोकनेवाली बुढ़िया दाना भूँज रही थी। मिठाई, कचौड़ी, कॉफी, कोला से तृप्त लोगों के मुँह में पानी आ रहा था। वृद्धजनों के लेखक दीनानाथ झुनझुनवाला के हाथों में एक पैकेट था। उस पर महमह करती गुलाबी गंध की मोतीचूर की मिठाइयाँ बन्द थीं और और कुछ था जिसे पैसा कह सकते हैं, रुपया नहीं। उनकी बगल में जस्टिस एन०एस० रावल, लेफ्टिनेंट कर्नल ब्रह्मानंद राय, आकाशवाणी के निदेशक श्रीराम उनके सहकर्मी बालाजी लखेन्द्र, डॉ० बृजबाला, डॉ० आनन्द कुमार, शिवाजी सिंह, डॉ० मनोज कुमार, आशीष, प्रो० लोकनाथ सिंह, अमेरिका के रिसर्चर बर्नर ऐश, फादर सेड्रियागों, युवा वैद्य डॉ० शुभदर्शन त्रिपाठी, डॉ० जितेन्द्रनाथ मिश्र के साथ श्रीमती झुनझुनवाला हाथ में अपना पैकेट लिए खड़े थे। टूटी-फूटी सड़क और छपरी। उसे लगा कि उसी के विषय में कुछ हो रहा है। अपनी जगह से उठी और सबके पाँव छूने के लिए झुकी। सबके पाँव पीछे खिसके। सबने कहा 'बूढ़ी काकी' हम आपको प्रेमचंद सम्मान देने आए हैं। बूढ़ी काकी न हँस रही थी, न रो रही थी। बाकायदा सम्मानपत्र और उपहार देने वाले इस तरह धक्का खा रहे थे कि एक बड़े अधिकारी नाले में गिरते-गिरते बचे। नाले का नाम पड़ गया 'मुनारी काकी

कहाँ गये प्रेमचंद

श्री दीनानाथ झुनझुनवाला तथा
श्रीमती दीनानाथ बूढ़ी काकी को सम्मान देते हुए

नाला'। 'बूढ़ी काकी' ने दाएँ हाथ से लिया बाँए हाथ से रखा और भूँजा भूँजने लगी। बर्नर ने कहा, काकी 'पापकॉर्न'। लोगों ने कहा 'मकई का लावा'। वजन 25 ग्राम भुगतान 100 रुपये। जस्टिस रावल ने कहा चाची, चना मूढ़ी। पैकेट 100 ग्राम भुगतान 500। फिर सौ, दो सौ, पाँच सौ का सिलसिला अँधेरे में खोता चला गया। सबने प्रणाम किया, बूढ़ी काकी ने हाथ जोड़े, बोल नहीं फूटे। आयोजन अपनी नई कल्पनाओं के लिए सदैव आस्पद और विवादास्पद डॉ० शुकदेव सिंह का था।

—प्रधान सम्पादक

काशी शहर नौरंगा

मिजाज में कबीर
आस्था के वृत्त से
विद्रोह की सीमा में प्रवेश करता
एक बेलौस शहर है बनारस,
जिसकी भावना में तुलसी
तो मिजाज में कबीर है।
जरा नजर दौड़ाइये
यहीं कहीं बैठकर
सुझाया था रैदास ने—
मन चंगा तो कठौती में गंगा
काशी शहर नौरंगा, रे भाई
काशी शहर नौरंगा।

—शिवकुमार पराग

मध्यप्रदेश की साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रतिभा

—पुरुषोत्तमदास मोदी

भारत का हृदय मध्यप्रदेश सुरम्य प्रकृति से भरपूर महत्त्वपूर्ण एक ऐतिहासिक प्रदेश है। साँची के स्तूप, खजुराहो के मन्दिर, भेड़ाघाट की संगमरमरी चट्टानें, चचाई, चित्रकूट, धुँआधार जैसे जल-प्रपात, कान्हा किसली, बाँधवगढ़ जैसे अभ्यारण, शिवपरी तथा बावरा में दुर्लभ खरमौर एवं गौणवर्ण मध्यप्रदेश के सुरम्य दर्शनीय स्थल हैं। हीरे की प्रमुख खानें मध्यप्रदेश में ही हैं। नर्मदा, ताप्ती, चम्बल, सोन, बेतवा प्रमुख नदियाँ हैं जो प्रकृति का शृंगार हैं और जीवन की स्रोत हैं।

साहित्य, कला, शिल्प, संगीत सभी दृष्टि से मध्यप्रदेश अत्यन्त समृद्ध है। महाकवि कालिदास, भवभूति, भारवि दण्डी, नागार्जुन, मण्डन मिश्र, विल्हण आदि संस्कृत के प्रमुख रचनाकार थे। मध्यकाल में अष्टछाप के कवि कुम्भनदास और चतुर्भुजदास, दामोदरदास, हरिदास स्वामी, महाकवि बिहारी, केशवदास, पद्माकर, राजाछत्रसाल, लाल कवि, चिन्तामणि, भूषण आदि प्रमुख कवि थे जिन्होंने मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

आधुनिक काल में जगन्नाथप्रसाद 'भानु', विनायक राय, सैयद अमीरअली मीर, राय देवीप्रसाद पूर्ण, लोचनप्रसाद पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डे, कामताप्रसाद गुरु, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, केशवप्रसाद पाठक, माधवराव सप्रे, पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र, पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, पं० मातादीन शुक्ल, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डॉ० विनयमोहन शर्मा, सेठ गोविन्ददास, उषादेवी मित्रा, डॉ० रामकुमार वर्मा, भवानीप्रसाद मिश्र, नर्मदाप्रसाद खरे, व्यौहार राजेन्द्र सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सूर्यनारायण व्यास, हरिकृष्ण 'प्रेमी', जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द', बालकवि बैरागी, वीरेन्द्र मिश्र, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीकान्त वर्मा, राजेन्द्र अवस्थी, दुष्यन्तकुमार, प्रभुदयाल अग्निहोत्री, माणिक वर्मा, भवानीप्रसाद तिवारी, राजेन्द्र माथुर, प्रभाष जोशी, प्रमोद वर्मा सभी मध्यप्रदेश की देन हैं।

समकालीन साहित्यकारों में अशोक वाजपेयी, शिवकुमार श्रीवास्तव, राजेश जोशी, चन्द्रकांत देवताले, भगवत रावत, विनय दुबे, मेहरुन्निसा परवेज, प्रभाकर श्रोत्रिय, धनंजय वर्मा, कमलाप्रसाद, मलय, विष्णु नागर, रमेशचन्द्र शाह, ज्योत्सना मिलन, मालती जोशी, विजय बहादुर सिंह, उर्मिला शिरीष, शरद सिंह, रमेश दवे, श्रीराम परिहार, नर्मदाप्रसाद उपाध्याय, श्यामसुन्दर दुबे, प्रेमशंकर रघुवंशी, अवधकिशोर पाठक, सीता किशोर, ज्ञान चतुर्वेदी, कैलाश मंडलेकर, सरोजकुमार, अनामिका तिवारी, जवाहरलाल 'तरुण' विशेष उल्लेखनीय हैं।

मध्यप्रदेश का आधुनिक साहित्य स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में ओज और प्रखरता से आरम्भ होता है। छायावाद का सांकेतिक स्वर देश के सांस्कृतिक ऐश्वर्य के चित्रण तक सीमित था। सर्वप्रथम मुकुटधर पाण्डेय ने 1920 में जबलपुर से प्रकाशित 'श्री शारदा' में छायावाद को परिभाषित किया था। छायावाद की सांकेतिकता स्वातंत्र्य संघर्ष के क्षेत्र में राष्ट्रीयता के रूप में प्रस्फुटित हुई। कविता देशहित बलिदान की वाणी बोलने लगी। एक भारतीय आत्मा पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने युवकों को ललकार दी—

द्वार बलि का खोल
चल भूडोल कर दें,
एक हिमगिरि एक सिर
का मोल कर दें,
दो हथेली हैं कि
पृथ्वी गोल कर दें ?

माखनलालजी ने अपनी कलम, अपनी वाणी दोनों से देश-भक्ति का आवाहन किया। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उनकी महत्त्वपूर्ण देन है। वे वैष्णव योद्धा थे। उनका समर्पण था—

मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर तुम देना फेंक
मातृभूमि पर सीस चढ़ाने
जिस पथ जायें वीर अनेक।

बालकृष्ण शर्मा ने भी उद्घोष किया—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाय।

सुभद्राकुमारी चौहान ने झाँसी की रानी के माध्यम से बलिवेदी पर मर-मिटने का आह्वान किया। उन्होंने अपनी राष्ट्रीय रचनाओं में सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय भावनाओं को तत्कालीन सन्दर्भों में अभिव्यक्त किया। उनके पति ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान राष्ट्रप्रेमी तो थे ही, 'उत्सर्ग' 'कुली प्रथा' और 'गुलामी का नशा' जैसे नाटकों के लिए भी चर्चित थे। उन्होंने हिन्दी की प्रारम्भिक लघु कथाएँ लिखी थीं। देवरी के सैयद अमीर अली 'मीर' का मीर मण्डल अपने दिनों का विख्यात कवि मण्डल था। मीरजी माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य गुरु थे।

ग्वालियर के जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' के नाटकों तथा काव्य रचनाओं में भी देशभक्ति का स्वर ही प्रधान है। 'बलि पथ के गीत' उनकी सुप्रसिद्ध रचना है।

सीतामऊ (मालवा) के महाराजकुमार रघुवीर सिंह भावात्मक गद्य-लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। छायावाद युग में गद्य काव्य की जिस विधा को प्रश्रय और प्रोत्साहन मिला था, रघुवीर सिंह उसके प्रमुख शैलीकारों में हैं। आपकी पुस्तक 'शेष स्मृतियाँ' गद्य काव्य की श्रेष्ठतम रचना है।

सागर के कामताप्रसाद गुरु अपने हिन्दी व्याकरण के कारण हिन्दी जगत में सदैव स्मरणीय रहेंगे। उन्होंने 'बाल सखा' और 'सरस्वती' का भी सम्पादन किया।

पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र का जन्म यद्यपि उत्तर प्रदेश में हुआ था किन्तु उनकी कर्मभूमि मध्यप्रदेश रही। 'लोकमत', 'श्री शारदा' तथा 'सारथी' का सम्पादन उन्होंने सफलतापूर्वक किया। राजनीति के क्षेत्र में आप मध्यप्रदेश के भीष्म पितामह थे। साहित्य क्षेत्र में 'कृष्णायन' महाकाव्य द्वारा आपने भारतीय चिन्तन धारा एवं विराट जीवन की बहुरूपता को एक सुघर इकाई प्रदान की।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के बाद 'सरस्वती' के सम्पादन में मध्यप्रदेश के साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने 1920 से 1927 ई० तक 'सरस्वती' का सम्पादन किया। पं० देवीदत्त शुक्ल ने 27 वर्षों तक 'सरस्वती' का सम्पादन किया। कामताप्रसाद गुरु भी 'सरस्वती' के सम्पादक थे। सरस्वती के परवर्ती सम्पादक पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' भी मध्यप्रदेश के थे।

सेठ गोविन्ददास ने राजनीति के माध्यम से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन कराने के साथ-साथ अनेक नाटकों की रचना की और 'इंदुमती' नामक उपन्यास भी लिखा, जिसमें कृत्रिम गर्भाधान से उत्पन्न समस्या का चित्रण है।

उषा देवी मित्रा अपनी कहानियों और उपन्यासों के लिए स्मरणीय हैं। यथार्थ के साक्ष्य में मानव-जीवन के अन्तरंग में उठने वाली छोटी-छोटी लहरियों को अपनी कहानियों में आपने सार्थक रूप दिया।

ग्वालियर के श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' को हिन्दी नाटककारों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। मध्यकालीन इतिहास से कथा प्रसंगों को लेकर उन्होंने राष्ट्रीय जागरण, धर्म निरपेक्षता तथा विश्व-बन्धुत्व का सन्देश दिया।

नई कविता के अभ्युदय में मध्यप्रदेश की विशेष भूमिका है, 'तारसप्तक' के कवियों में गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल और मुक्तिबोध मध्यप्रदेश के थे। सात में से पाँच। 'दूसरा सप्तक' के 'गीत फरोश' के गायक भवानीप्रसाद मिश्र को कौन भूल सकता है? 'मैं गीत बेचता हूँ' द्वारा मिश्रजी ने आज के पाठक की गिरी अभिरुचि और काव्य के मूल्यों के ह्रास को व्यंग्यात्मक शैली में अभिव्यक्त किया।

हरिशंकर परसाई और शरद जोशी ने अपनी चुटीली रचनाओं द्वारा हास्य व्यंग्य को एक नई विधा, नई शैली और ऊर्जा प्रदान की है। शरद

जोशी ने शब्दों के भिन्न-भिन्न प्रयोगों द्वारा शब्दों को नई अर्थवत्ता प्रदान की है। विद्रोही, माणिक वर्मा, ज्ञान चतुर्वेदी, कैलाश मंडलेकर, विष्णु नागर, शशांक दुबे का सम्बन्ध भी मध्यप्रदेश से है।

गजानन माधव मुक्तिबोध साहित्य क्षेत्र में एक चुनौती के रूप में उभरे। मुक्तिबोध ने अपने सम्पूर्ण कृतित्व, कविता, कहानी, डायरी, आलोचना में साहित्यिक आत्मतुष्टि के खिलाफ तर्कपूर्ण कारवाई की है। वे मध्यप्रदेश के वैचारिक संघर्ष के प्रतीक हैं।

नाटककार रामकुमार वर्मा का जन्म सागर में हुआ किन्तु उनका कर्मक्षेत्र प्रयाग रहा। एकांकी नाटकों के जनक के रूप में आप सदैव स्मरणीय रहेंगे।

नये कवियों में श्रीकान्त वर्मा का विशिष्ट स्थान रहा, अल्प आयु में ही वे कालकवलित हुए। अपने गज़ल संग्रह 'साये में धूप' ने दुष्यन्तकुमार को लोकप्रियता प्रदान की। इस कविता संग्रह के 20 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

शिवमंगल सिंह 'सुमन' जन्म से उत्तरप्रदेश के हैं किन्तु आपका कर्मक्षेत्र मध्यप्रदेश रहा। 'सुमन'जी लोकप्रिय कवि थे। आपकी कविताओं में मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र का प्रभाव है। आपकी रचना में गेयता रचना की स्वच्छन्दता के साथ अतिरिक्त गुण भी है। आपकी कविताओं की एक विशेषता है, मानवीय समता पर आस्था और क्रान्ति के प्रति विश्वास।

मध्यप्रदेश से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं ने भी अपनी गुणवत्ता और स्तरीयता से अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। लोग अभी 'कर्मवीर' और 'वीणा' जैसी पत्रिकाओं को भूले नहीं हैं। 'वीणा' को मध्यप्रदेश की प्राचीनतम पत्रिका होने का गौरव प्राप्त है। डॉ० श्यामसुन्दर व्यास विगत 35 वर्षों से 'वीणा' का सम्पादन कर रहे हैं। मध्यप्रदेश से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में जो उल्लेखनीय हैं, उनमें प्रमुख हैं—प्रगतिशील वसुधा, पहल, साक्षात्कार, चौमासा, अक्षरा, अक्षत, शब्द शिखर, कथाचक्र, हैलो हिन्दुस्तान। डॉ० हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के हिन्दी विभाग के अन्तर्गत क्रियाशील बुंदेली पीठ ने बुंदेली लोक साहित्य और भाषा पर केन्द्रित सन् 1982 से '92 तक 'ईसुरी' नामक वार्षिक पत्रिका के नौ अंक प्रकाशित किये थे जिनको अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। डॉ० कान्तिकुमार जैन इसके सम्पादक थे। एक तरह से यह मधुकर, मामुलिया, लोकवार्त्ता की परम्परा की पत्रिका थी।

साहित्य की नई विधाओं और आन्दोलनों को नेतृत्व प्रदान करने में मध्यप्रदेश की अग्रणी भूमिका रही है। छायावाद के प्रारम्भिक कवि पं० मुकुटधर पाण्डेय, माखनलाल चतुर्वेदी और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी मध्यप्रदेश के ही थे। हालावाद के प्रवर्तन का श्रेय जबलपुर के केशवप्रसाद पाठक को है। वे उमर खैयाम की रुबाइयों के पहले हिन्दी अनुगायक थे। उनकी प्रारम्भिक कविताएँ 'प्रेमा' में प्रकाशित हुई थीं। छायावादोत्तर काव्य के अग्रणी कवि अंचल, सुमन और गिरिजाकुमार माथुर भी मध्यप्रदेश के ही हैं। नवगीतकारों में देवास के नईम का उल्लेख सम्मान से किया जाता है। नई कविता के प्रथम काव्य संग्रह 'तार सप्तक' की योजना मध्यप्रदेश में ही बनी थी। व्यंग्य तो मध्यप्रदेश में ही फलता-फूलता है। संस्मरण के क्षेत्र में सागर के कान्तिकुमार जैन ने पिछले दशक में जो प्रतिष्ठा अर्जित की है, वह अनन्य है। पत्रकारिता के क्षेत्र में माधवराव सप्रे, कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर', मायाराम सुरजन, प्रभाष जोशी, राजेन्द्र माथुर पर सहज ही गर्व कर सकता है। नदियों की जीवनी और यात्रा विवरण लिखने वालों में जबलपुर के अमृतलाल बेगड़े को राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त है। 'अमृतस्य नर्मदा' और 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' के अनुवाद अनेक भारतीय भाषाओं में हो चुके हैं। तालाब को भारतीय कृषि व्यवस्था का मूलाधार मानने वाले अनुपम मिश्र नरसिंहपुर के हैं। वे गाँधी मार्ग के सम्पादक हैं। शान्ति निकेतन के पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष मोहनलाल वाजपेयी मंडला के थे। उन जैसा पत्र लेखक हिन्दी में दूसरा नहीं हुआ। हिन्दी के प्रबलतम समर्थकों में पं० रविशंकर शुक्ल और सेठ गोविन्ददास को लोग अभी भी याद करते हैं।

मध्यप्रदेश के साहित्यकारों की वाणी सदैव ओज और प्रखरता से परिपूर्ण रही है। वहाँ के साहित्यकारों ने भाषा और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नये कीर्तिमान रचे हैं। भाषा को जीवन की बोलचाल के निकट लाने के लिए भवानीप्रसाद मिश्र की उक्ति 'जिस तरह तू बोलता है, उस तरह तू लिख' सूक्ति का दर्जा प्राप्त कर चुकी है।

भोपाल के भारत भवन ने कला, साहित्य और संगीत के राष्ट्रीय केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित की है। इसकी परिकल्पना का श्रेय सागर के अशोक वाजपेयी को है। भोपाल में स्थापित दुष्यंत कुमार स्मृति संग्रहालय किसी साहित्यकार के नाम पर स्थापित देश का अद्वितीय संग्रहालय है। यह राजुरकर राज के सम्पादन में 'शब्द शिल्पियों के आसपास' जैसी पत्रिका प्रकाशित करता है। भारतीय भाषाओं की सम्पर्क संचयिका 'शब्द साधक' राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में प्रयास करने वाली संचयिका है। भोपाल में हिन्दी पत्रकारिता के शिखर पुरुष माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय देश का अद्वितीय विश्वविद्यालय है। प्रसिद्ध साहित्यकार अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' के जन्मदिवस पर आयोजित किया जाने वाला दिव्य स्मृति समारोह देशभर में चर्चित है। ओशो रजनीश लेखक तो नहीं थे पर अपनी विशिष्ट विचारधारा से उन्होंने हिन्दी के ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं के लेखकों को भी प्रभावित किया है। छत्तीसगढ़ अब प्रशासनिक एवं राजनीतिक रूप से मध्यप्रदेश से पृथक् हो चुका है किन्तु सांस्कृतिक रूप से दोनों एक ही हैं। छत्तीसगढ़ के हबीब तनवीर ने लोक रंगमंच की प्रतिष्ठा के लिए ऐतिहासिक कार्य किया है। छत्तीसगढ़ की तीजनबाई और झाड़राम देवांगन ने पंडवानी गायन में अन्तर्राष्ट्रीय कीर्ति अर्जित की है। प्रसिद्ध नृतत्त्वशास्त्री पं० श्यामाचरण दुबे का सम्बन्ध भी मध्यप्रदेश से था। मुक्तिबोध जीवन के अन्तिम पड़ाव में भले ही छत्तीसगढ़ के राजनादगाँव चले गये हों किन्तु वे स्वयं को मध्यप्रदेश का ही मानते थे। उनके आसपास जिन कवियों की मंडली एकत्र हो गई थी, उनमें अधिकांश मध्यप्रदेश के ही थे। 'नर्मदा की सुबह' नाम से वे इन कवियों का संकलन प्रकाशित करना चाहते थे। हिन्दी के प्रथम वैयाकरण पं० कामताप्रसाद गुरु का जन्म सागर में हुआ था और आजीवन उनका कार्यक्षेत्र जबलपुर बना रहा। हिन्दी के प्रथम पिंगलाचार्य जगन्नाथप्रसाद 'भानु' का सारा जीवन मध्यप्रदेश में ही बीता। हिन्दी के प्रथम रसाचार्य लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी भी मध्यप्रदेश के ही थे। निराला जी उनकी प्रतिमा के बड़े प्रशंसक थे। रामचरितमानस की विनायकी टीका के टीकाकार पं० विनायक राव भी मध्यप्रदेश के ही थे। सम्पादन एवं पाठ निर्धारण के क्षेत्र में नाथूराम प्रेमी अग्रणी माने जाते हैं। वे देवरी के थे। हिन्दी में पाकेट बुक की योजना उन्होंने ही बनाई थी। हिन्दी में शरच्चन्द्र को लोकप्रिय बनाने का श्रेय 'प्रेमी'जी की संस्था हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय को दिया जाता है।

मध्यप्रदेश के साहित्यिक केन्द्रों में जिन नगरों की गणना की जाती है, उनमें उल्लेखनीय हैं भोपाल, इंदौर, जबलपुर, ग्वालियर, खंडवा, सागर, होशंगाबाद आदि। पथरिया के माधवराव सप्रे लिखित 'एक टोकनी भर मिट्टी' को हिन्दी की पहली आधुनिक कहानी होने का श्रेय प्राप्त है। स्त्री विमर्श के इस युग में हम मध्यप्रदेश की उषा देवी मित्रा, सुभद्रा कुमारी चौहान को नहीं भूल सकते।

गोस्वामी तुलसीदासजी की उक्ति 'उपजत अनत अनत छवि लहहीं' को सार्थकता प्रदान करनेवाले आलोचकों, निबन्धकारों, भाषाविदों और कथाकारों में पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० राजनाथ पाण्डेय, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० बाबूराम सक्सेना, पं० उदयनारायण तिवारी और पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जैसे व्यक्ति सहज ही स्मरणीय हैं। हम यहाँ यह भी नहीं भूलना चाहते कि छायावाद की कवयित्री महादेवी वर्मा का जन्म इंदौर में हुआ था, भले ही उनका कार्यक्षेत्र उत्तर प्रदेश रहा हो।

स्वतंत्रता-पूर्व भारत में धर्म सहिष्णुता का प्रतीक 'कलामे रब्बानी'

इलाहाबाद के मशहूर शायर डॉ० ज़मीर अहसन द्वारा 'रामचरितमानस' के उर्दू भावानुवाद 'दरिया से दरिया तक' की चर्चा इस समय राष्ट्रीय स्तर पर है। 1200 पृष्ठों में तैयार इस पुस्तक पर डॉ० ज़मीर ने इमरजेंसी के दौरान 1975 में कार्य शुरू किया और 1988 तक पूरा किया। तमाम कोशिशों के बावजूद अभी तक यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हो पाया था, लेकिन मानस मर्मज्ञ पण्डित रामकिंकर द्वारा स्थापित 'रामायणम ट्रस्ट' इसे प्रकाशित करने जा रहा है। प्रसिद्ध शायर डॉ० बशीर अहमद 'मयूख' ने कहा था—''**रख दिया है राम को शब्दों में तुमने ढालकर, जिस तरह से माँ जवाँ करती है बेटा पालकर।**'' बकौल अनुवादक ''रामचरितमानस सिर्फ हिन्दुओं का नहीं बल्कि इन्सानियत का दस्तावेज है। ऐसे दस्तावेजों की ज़रूरत हर मज़हब को है। अच्छे और उपयोगी ग्रन्थों का अन्य भाषाओं में अनुवाद करना समाज व मानवता की सर्वोत्तम सेवाओं में एक है। बशर्ते विद्वानों को हिम्मत व मेहनत करनी होगी और रूढ़ियों को तोड़ते हुए ऐसे ग्रन्थों को अन्य भाषी लोगों तक पहुँचाना होगा।'' तुलसी की नगरी काशी में तो यह कार्य बहुत पहले से होता रहा है। 1935 में वाराणसी से प्रकाशित 'कलामे रब्बानी' पुस्तक को देखकर यह सुखद आश्चर्य होता है कि उस समय आज की अपेक्षा बहुत ही बेहतर साम्प्रदायिक सामञ्जस्य व हिन्दू-मुस्लिम सहभाव था। उस समय के सुप्रसिद्ध उर्दू-विद्वान व शायर नज़र सोहानवी ने 'नग़्मए इल्हाम' शीर्षक देकर भगवद्गीता के संस्कृत श्लोकों का उर्दू नज़्म में आसान और दिलकश तर्जुमा किया है। मुंशी प्रेमचन्द सहित उस दौर के तमाम बुद्धिजीवियों ने इसी पुस्तक में नज़र सोहानवी के इन नज़्मों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। पं० मदन मोहन मालवीय को समर्पित इस दुर्लभ पुस्तक को लगभग बीस लोगों ने चन्दा देकर प्रकाशित कराया था और प्रकाशित प्रतियों की कीमत लोगों की हैसियत के मुताबिक ली जाती थी, मसलन—रईसों से उनकी हिम्मत के मुताबिक, अवाम से एक रुपया, छात्रों-प्रोफेसरों-मास्टरों से बारह आना, मुसलमानों व दूसरे मजहब वालों को मुफ्त और हिन्दू गरीब छात्रों को भी मुफ्त। शायर ने 275 पृष्ठ के इस ग्रन्थ की रचना में पाँच वर्ष लगाया और अपने दौर के हर-एक मशहूर उर्दू व्याकरण, भाषा के विद्वानों व गीता के मर्मज्ञों को रचनात्मक कौशल से अभिभूत कर दिया।

इस पुस्तक को पढ़ने के बाद मन आज के सामाजिक परिवेश व स्वतन्त्रता पूर्व के सद्भाव में तुलना करने को विवश हो जाता है। पुस्तक के शुरू में ही शायर लिखता है—

सैकड़ों सज्दे तड़पते हैं जबीने शौक़ में
ऐ मुकद्दस ख़ाक,
ऐ गोकुल के बुतख़ाने की ख़ाक
खेंच ले अपने 'नज़र' को इस तरह
आग़ोश में
तेरे ज़र्रों में समा जाए ये सोहाने की खाक

हमारे राजनेताओं ने अपनी गोटियाँ फिट करने के लिए सम्प्रदायों के अन्तर्सम्बन्धों व अन्तर्निर्भरता को दरकिनार किया और वैमनस्यता बोई। आधुनिक राजनीति ने देश के सद्भाव को आघात पहुँचाया है। जनमानस इससे ऊब चुका है। यहाँ के नागरिकों के मूल मानस में भारतीय संस्कृति के मान्य ग्रन्थों की ध्वनि गूँजती रहती है। पहले लोग एक-दूसरे के धर्मों का सम्मान ही नहीं करते थे बल्कि सभी धर्मों की अच्छाई को ग्रहण व प्रसारित भी करते थे। वह दौर संस्कृति व संवेदना के मिश्रित उठान का था। भेदभाव व एक-दूसरे धर्म को नीचा साबित करने की प्रवृत्तियाँ कुंद पड़ी थीं। स्वतन्त्रता की जंग लड़ने के लिए यहाँ के समुदाय सहधर्मी सामर्थ्य को महत्त्वपूर्ण मानते थे। एकता की बहुत आवश्यकता थी। जनता को लेकर जनता के लिए बाहरी शक्तियों से लड़ना ही बुद्धिजीवियों का भी प्रयास था। जनता का लक्ष्य आजादी थी और वे उस आजादी के बदले छद्म धार्मिक चौहद्दियों को ढहाना तो दूर उसकी बुनियाद ही नहीं पड़ने दी थी। जनता की एकता के लिए उनके धर्मों का सम्मान महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है अत: सभी धर्म के बुद्धिजीवी एक दूसरे के धर्मों का सम्मान व प्रसार भी करते थे। 'कलामे रब्बानी' में शायर ने लिखा है कि—

जिसका दिल है बे ग़रज़ शामो सहर,
मेरे इर्शादात की तब्लीग़ पर
वह बशर पाएगा कुल्फ़त से नजात,
मेरी मंज़िल में हमेशा की हयात
आ़लमे इन्सां में मेरे नाम पर,
काम जो भी कर सकें अह्ले नज़र
ऐसे सब अफ़आ़ल से यह कोर हक़,
अफ़ज़लो बर तर है ऐ दिल्दारे हक़
उस बशर से कौन है प्यारा मेरा,
उसका मैं शैदा हूँ वह शैदा मेरा
कोई मेरी नज़्र की ख़ातिर कहीं,
इससे बेहतर काम कर सकता नहीं
इसमें मेरी ज़ात की तब्लीग़ है,
ज़िक्रे हक़, हक़ बात की तब्लीग़ है।

अब तो गैर धर्म के बारे में सकारात्मक लिखने वाले मुसलमान लेखकों को भी फतवे जारी हो जाते हैं। यह सब राजनीतिक पतन को ही दर्शाता है।

नज़र सोहानवी की इस पुस्तक के पूरे नज़्मों पर यहाँ विस्तार से लिखना मुश्किल है, फिर भी इनके अनुवाद व उर्दू काव्य-सामर्थ्य की एक झलक इसी श्लोक के तर्जुमे से ले सकते हैं—

श्लोक :

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जाग्रति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने: ॥

तर्जुमा :

जानते हैं रात जिसको सब बशर, नेक़
इन्सानों को है मिस्ले सहर।
और जब बेदार हो सारा जहाँ, जानते
हैं शब उसे आ़रिफ़ यहाँ॥

पूरी पुस्तक अट्ठारह अध्याय में विभक्त है। हर अध्याय में भगवद्गीता के अध्यायों का लगभग व्यापक निचोड़ बेहतरीन नज़्मों में ढलकर प्रस्तुत हुआ है। खासियत यह कि सभी नज़्म संस्कृत श्लोकों के समान प्रवाह वाले और सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से गीता के श्लोकों के समतुल्य ही हैं। फर्क यही हो सकता है कि यह एक इन्सान का प्रयास है।

'कलामे रब्बानी' पुस्तक में तत्कालीन इस्लामिक केन्द्र-प्रमुखों व मर्मज्ञों की शुभकामनाएँ और नेक सम्मतियाँ भी प्रकाशित हैं, मसलन—मुसलमानों के एक बड़े तबके के पीर मुसव्विरे फ़ितरत हजरत ख्वाजा हसन निजामी देहलवी लिखे हैं कि—''....जिन लोगों के पास गीता इल्हामी किताब नहीं है वह भी इसके आला मज़ामीन और हकीमाना रूहानी तालीमात की कद्र करते हैं, ...नज़र साहब की यह मजहबी और अदबी खिदमत काबिले तहसीन है, ...मुल्क में इसकी काफी कद्र की जाएगी।'' मोहम्मद नूह नारवी लिखे हैं कि—''भगवद्गीता एक मुकद्दस किताब है, ...नज़र साहब ने इसका तर्जुमा करके तालिबाने मालूमात पर बड़ा एहसान किया। इसमें ऐसी-ऐसी मुफ़ीद बातें और ऐसे-ऐसे नादिर नुक्तें हैं कि हर मजहब वाला जिन्हें अपना दस्तूर उल अमल बना कर दीनो दुनिया में एक इम्तयाजी दर्जा हासिल कर सकता है।'' मशहूर मुस्लिम नेता लाहौर के मौलाना जफ़र अली खाँ ने लिखा कि—''नज़र साहब ने अपनी ख़ुदादाद क़ाबलीयत को एक निहायत ही मुबारक मक़सद की नज्र किया है, ...मैं इस कारनामे पर उनको मुबारकबाद देता हूँ।'' इन्कलाब अखबार लाहौर के सम्पादक मौलाना अब्दुल मजीद सालिक ने लिखा है कि—''इस तरह की किताब हिन्दुओं और मुसलमानों के दरमयान वह्दते फ़िक्र पैदा करने और एक-दूसरे के एहसासाते मज़्हबी को समझने में बेइन्तहा कार आमद होती है, ...नज़र साहब ने श्रीकृष्ण जी के बे नीज़र मौइज़ए अमल

को नज़्मे उर्दू का लिबास पहनाकर उर्दू खानों पर एहसाने अ़ज़ीम फ़र्माया है।'' लाहौर गवर्नमेण्ट कालेज के प्रोफेसर सैयद अहमद शाह बुखारी लिखे कि—''इस तर्जुमे की बदौलत भगवद्गीता को बेश अज़ पेश मक़बूलियत हासिल होगी और इसके फ़ल्सफ़े से वह लोग भी मुस्तफ़ीद होंगे जिनका मुतालिआ़ बेश्तर उर्दू तक महदूद रहता है।'' इसके अतिरिक्त लाहौर के मशहूर उर्दू विद्वान् सैयद इम्तयाज अली ताज, लाहौर गवर्नमेण्ट कालेज के प्रोफसर सूफी गुलाम मुस्तफा तबस्सुम, लाहौर के प्रसिद्ध पत्रकार आबिद चुनियानी व मशहूर इस्लामी धर्मवेत्ता मोहम्मद बबीबुस्सुबहान (साबिर इलाहाबादी) सहित दर्जनों माहिरों ने अपने विचारों से हिन्दू-मुस्लिम सहसंस्कृति व सहकारिता के भाव का स्पष्ट संचारण किया है।

उर्दू जुबान के मशहूर अदीब फाज़िल नक्क़ाद और जादू बयान शायर जगमोहन लाल खाँ, अनेक भाषाओं के विद्वान डॉ० ताराचंद, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में उर्दू, फारसी व अरबी के प्रोफेसर विद्वान महेश प्रसाद, उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान् ब्रजमोहन दत्तात्रय कैफ़ी, 'अदबी दुनिया' लाहौर के सम्पादक मौलाना मन्सूर अहमद और सर तेज बहादुर सप्रू के अग्रलेखों से सँवरी 'कलामे रब्बानी' में पण्डित मदन मोहन मालवीय ने लिखा है कि—''भगवद्गीता के समान भक्ति और सात्विक कर्म की शिक्षा देने वाली कोई दूसरी पुस्तक नहीं है। इसके कई भाषाओं में प्रशंसित अनुवाद हुए हैं। ....पण्डित नज़र सोहानवी का किया अनुवाद बहुत ऊँचा स्थान पाने के योग्य है। मेरे हिसाब से जब तक उर्दू भाषा रहेगी तब तक यह अनुवाद आदर के साथ पढ़ा जाएगा और ऊपरी हिन्दुस्तान में, विशेषकर पश्चिम और उत्तर पश्चिम के प्रान्तों में हिन्दुओं और मुसलमानों में आध्यात्मिक ज्ञान और सात्विक जीवन फैलाने का बहुत सुन्दर साधन होगा। नज़र साहब ने इसका प्रकाशन करके मनुष्य जाति की जो सेवा की है उसके लिये वे धन्यवाद व सम्मान के पात्र हैं।''

कानपुर का मासिक 'जमाना', लाहौर का मासिक 'सदा बहार', 'पारस लाहौर' व 'कर्मवीर' जैसे पिछली सदी के प्रसिद्ध शुरुआती समाचार पत्रों की सराहनायुक्त टिप्पणियाँ भी पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों में समायोजित हैं। पुस्तक के अन्त में ही हिन्दी गद्य साहित्य के शिखर-पुरुष मुंशी प्रेमचन्द लिखते हैं कि ''...नज़र साहब ने भगवद्गीता का जितना ग़ाइर मुतालिआ़ किया है उतनी ही वज़ाहत से वे इसको नज़्म करने में कामयाब हुए हैं। वे अपने 'बालिग़ ज़ौक़े शेरी' से फ़ल्सफ़ा और 'मा बादुत्तबीआ़त' के अदक़ मसाइल को इस ख़ूबी से नज़्म किया है कि तर्जुमे में आमद की शान पैदा हो गई है। मवाज़ना करना तो बहुत मुश्किल है लेकिन मेरा ख़्याल है कि अब तक इस किस्म के जितने मन्ज़ूम तर्जुमे शाए हुए हैं उनमें हज़रते नज़र के 'कलामे रब्बानी' को ममताज़ दर्जा हासिल है।''

मालवीय जी द्वारा जिस 'कलामे रब्बानी' के बारे में भाषा जितनी ही लम्बी उम्र व ख्याति पाने का आश्वासन व्यक्त किया गया और प्रेमचन्द द्वारा जिस किताब को ममताज़ का दर्जा मिला, वह अब दुर्लभ है। सिद्ध लक्ष्मी प्रेस वाराणसी से प्रकाशित इस पुस्तक की जीर्ण-शीर्ण एक प्रति ही उपलब्ध है। अब जरूरत है ऐसी पुस्तकों के संरक्षण, पुनर्प्रकाशन व प्रसार की, ताकि लोगों को असली हिन्दुस्तानी परम्परा से परिचय मिले। हालांकि अभी हाल ही में एक और पुस्तक 'नग्मा-ए-इरफान' इसी वाराणसी से प्रकाशित हुई है। वाराणसी के ही उर्दू शायर टी०एन० श्रीवास्तव ने भगवद्गीता के कुल अट्ठारह अध्यायों का उर्दू लिपि में काव्यानुवाद किया है, साथ ही उर्दू के समानान्तर नज़्मों का हिन्दी लिपि में भी मुद्रण पाठकों को सुविधा प्रदान करने वाला है। श्री श्रीवास्तव का प्रयास सराहनीय है।

—एल. उमाशंकर सिंह

पहले अपना अभ्यास

दुनिया में सचमुच अद्भुत है यारों पुस्तक-ज्ञान।
पुस्तक स्वयं बना देती है कितनों को विद्वान्॥
कितनों को विद्वान भरा जिनके अन्दर सद्ज्ञान।
जिनके बूते पर जाने कितने हो गये महान॥
कहते राम अवतार बड़ा बनने की गर हो आस।
पुस्तक पढ़ने का डालो पहले अपना अभ्यास॥

—डॉ० रामअवतार पाण्डेय, वाराणसी

बाबू श्यामसुन्दरदास के दो नकार

बाबू श्यामसुन्दर दास सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल में असिस्टेण्ट हेड मास्टर थे। अंग्रेजी पढ़ाते थे। दसवीं कक्षा को व्याकरण समझाते हुए कहा, 'टू नेगेटिव्ज् मेक ऐन एफरमेटिव।' अर्थात् नकार दो बार एक साथ प्रयुक्त हों तो वाक्य का अर्थ सकारात्मक होता है, जैसे—

अंगीकार करना न उनकी 'सनेही' होता,
नहीं कर देते नहीं-नहीं करते नहीं।

एक लड़के ने उठकर पूछा, मे आई गो आउट सर? विषय में व्यस्त बाबू साहब ने लापरवाही से ''नो, नो'' कह दिया और पढ़ाने में तल्लीन हो गये। थोड़ी देर बाद उनका ध्यान उधर गया तो क्लास के लड़कों से पूछा, ''हैं! नरेन्द्र कहाँ गया?''

''वह बाहर गया है, सर।''

''क्यों! मैंने तो उसे मना किया था। बड़ा नालायक है। आने दो उसे।''

काफी देर बाद इधर-उधर घूम-फिरकर नरेन्द्रनाथ चटर्जी कक्षा में उपस्थित हुए। बाबू साहब भरे बैठे थे।

''क्यों, कहाँ गये थे?''

''सर आप ही से पूछकर तो गया था।''

''हूँ, मैंने तुम्हें मना नहीं किया?''

''सर, आपने दो बार 'नो नो' कहा था। अभी आप ही ने पढ़ाया है कि 'टू नेगेटिव्ज् मेक वन एफरमेटिव' इसलिए मैंने समझा आप 'हाँ' कह रहे हैं।''

श्यामसुन्दर दास ठठाकर हँस पड़े। गुस्सा काफूर हो गया। नरेन्द्रनाथ चटर्जी की 'जगबन्धु बाबू की दूकान' के नाम से प्रसिद्ध ढुण्ढिराज गणेश पर बर्तनों की बड़ी-सी दूकान थी।

डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डे 13 अगस्त 2007 को वाराणसी आये, पुरुषोत्तमदास मोदी ने अपने निवास पर उनका स्वागत किया और डॉ० पृथ्वीकुमार अग्रवाल की पुस्तक **प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु** तथा डॉ० नीहारिका की **प्राचीन भारतीय पुरातत्त्व अभिलेख एवं मुद्राएँ** भेंट की।

साइबर समय और पुस्तकें

—डॉ० सुरेन्द्र वर्मा

यह इण्टरनेट का दौर है। कम से कम समय और श्रम में अधिक से अधिक सूचनाएँ हासिल कर लेने के लिहाज़ से इण्टरनेट लोगों की बेहतर पसन्द साबित हो रहा है। सिर्फ एक बटन दबाने भर से हमारी आँखों के सामने अनगिनत सूचनाएँ उपस्थित हो जाती हैं। ऐसे में एक बहुत अहम सवाल उठता है कि हमारे इस साइबर समय में पुस्तकों की कितनी महत्ता शेष रह गई है?

यों तो पुस्तकों के पाठक पहले भी गिने-चुने ही थे। पुस्तकें केवल कुछ ख़ास क़िस्म के बौद्धिक अभिरुचि वालों को ही प्रिय थीं। मुझे नहीं लगता कि इस स्थिति में आज कुछ बदलाव आया है। सर्जनात्मक और संवेदनशील ज्ञान-पिपासुओं के लिए पुस्तकें आज भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी वे कभी भी, किसी भी, काल बिन्दु पर रही हैं। आज भी ऐसे बुजुर्गों और युवकों की भी, कमी नहीं है जो साइबर की अपेक्षा किताबों को अधिक वरीयता देता हैं। और इसका कारण है।

वैसे यह कह देना तो बहुत आसान है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपनी चमक खो चुका है किन्तु यदि हम ध्यान से देखें तो वास्तविक स्थिति ऐसी नहीं है। आज भी प्रिण्ट मीडिया का महत्त्व और प्रकारांतर से पुस्तकों का महत्त्व कम नहीं हुआ है। नेट पर उपलब्ध तमाम जानकारियों के बावजूद गहन अध्ययन के लिए हमें किताबों की शरण में ही जाना पड़ता है। किताबों का कोई स्थानापन्न नहीं है। इण्टरनेट भी नहीं।

पुस्तकों से हमारा एक आत्मीय रिश्ता बन जाता है। वे हमारी संवेदनशीलता को विकसित करती हैं। हमारा पारिवारिक और सामूहिक जुड़ाव भी किताबों से ही होता है। हम अपने बाबा-परबाबा के ज़माने की किताबें, जो कभी और जो परिवार में आज सुरक्षित हैं, खोना नहीं चाहते। बल्कि बिरले और दुर्लभ पुस्तकों को हम सहेज कर रखते हैं। वे हमें समय-समय पर सूचनाएँ तो देती ही हैं, साथ ही हमारे वैयक्तिक, पारिवारिक तथा मैत्री-सम्बन्धों को भी जब-तब ताज़गी प्रदान करती रहती हैं। इस तरह का लगाव हम इण्टरनेट पर प्राप्त होने वाली इलेक्ट्रॉनिक सूचनाओं से नहीं रख सकते। ई-पेज पुस्तक-पृष्ठों की जगह नहीं ले सकता।

आप पुस्तकें कहीं भी, कैसे भी, पढ़ सकते हैं। बैठे-बैठे थक जाएँ तो लेट कर पढ़ सकते हैं। अपने अध्ययन कक्ष से ऊब जाएँ तो उन्हें किसी पार्क में पढ़ सकते हैं। लेकिन यह सुविधा आपको साइबर नहीं दे सकता। ई-मीडिया आपको बाँधता है, पुस्तकें आपको मुक्त करती हैं। वे कहीं अधिक अधिक सुविधाजनक हैं। उनमें जो लचीलापन है, इण्टरनेट पर वह सिरे से गायब है।

पुस्तकें हमारे जीवन-मूल्यों और आदर्शों को प्रस्तुत करती हैं। ऐसे हम यदि किसी पुस्तक के 'भक्त' बन जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं। भारत में न जाने कितने लोग **गीता** के भक्त हैं। वे पहले गीता के समक्ष भक्ति भाव से सिर नवाते हैं तब उसका पाठ करते हैं। गाँधीजी ने जब पहली बार रस्किन का **अन टू दिस लास्ट** पढ़ा था तो वे इस छोटी सी पुस्तक के मुरीद हो गए थे और तत्काल उन्होंने उसे अमल में लाने की कोशिश शुरू कर दी थी। इसी का परिणाम था कि 'सर्वोदय' जैसा आदर्श वे हमारे सामने रख सके। हम जिस तरह **गुरुग्रन्थ** साहेब को एक देवता की तरह पूज सकते हैं, साइबर को नहीं पूज सकते। किताबों से हम एक दिली-रिश्ता कायम कर सकते हैं। इण्टरनेट सिर्फ खोजी है, संवेदना के स्तर पर वह हमें संबल प्रदान नहीं कर सकता।

किताबें इन्सान की भरोसेमंद दोस्त हैं। साइबर-समय हो या कलयुग, पुस्तकें अपना महत्त्व बनाए रखेंगी।

अच्छी किताबें पढ़ना सुसंस्कृत होने की पहचान

जब तक मैं विद्यार्थी था, मेरे अध्यापक जिन लेखकों और किताबों की तारीफ करते थे, उन किताबों को किसी तरह प्राप्त करके पढ़ता था। पैसे नहीं होते थे, फिर भी किसी तरह उन किताबों को खरीदता था। अच्छी किताबों के बारे में जानने का तरीका यह होता है कि आप अगर कोई अच्छी विचारपरक किताब पढ़ें तो उस किताब में कई अच्छी किताबों और लेखकों का जिक्र मिलेगा। एक अच्छे वक्ता का भाषण सुनें तो उसमें वे कई अच्छी किताबों और लेखकों का नाम लेते हैं। आप मित्रों, अध्यापकों से बात करते हैं तो वे कई अच्छी किताबों की चर्चा करते हैं। मैं उन सब किताबों को ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ता हूँ। मुझे *लस्ट फॉर लाइफ* भीष्म साहनी ने आग्रहपूर्वक पढ़ाया था। अच्छी किताबें अपने नजदीक बुलावे के पहले एक संयम, एक अनुशासन की शत्त रखती हैं। पूरे समाज में जा सकने की क्षमता रखते हो, तभी एक अच्छी किताब के पास जा सकते हो। फैशन में अच्छी किताब नहीं पढ़ी जा सकती। एक सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति ही अच्छी किताब पढ़ सकता है। अच्छे शब्द का जो प्रभाव होता है दूरगामी होता है, कालातीत होता है।

जब तक ऊर्जावान, सभ्य और सुसंस्कृत रहने की इच्छा रखने वाले लोग रहेंगे, किताबें लिखी जाएँगी और पढ़ी जाएँगी। **—विश्वनाथ त्रिपाठी**

पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

उन्नीस सौ तिरेपन-चौवन के आस-पास पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी विश्वविद्यालय के जिस मकान में रहते थे उसमें एक आँगन था। आँगन के अन्दरूनी किनारे पर एक छोटा-सा कमरा था। वह मूलत: स्टोररूम रहा होगा। पण्डितजी ने उसे पढ़ने-लिखने का कमरा बना लिया था। निजी विशाल पुस्तकालय ऊपर की मंजिल पर था। ऊपर की मंजिल पर एक कमरा था। उसी में किताबें थीं। लिखने-पढ़ने की बहुमूल्य सामग्री थी। अगर मैं भूलता नहीं तो सीताराम सेक्सरिया पर द्विवेदीजी की लिखी कुछ सामग्री थी। भगीरथ कानोड़िया के बारे में भी। रवीन्द्रनाथ पर किसी प्रसिद्ध बांग्ला पत्रिका का विशेषांक था। अज्ञेय ने पण्डितजी के परिवार के कई सदस्यों के फोटो खींचे थे, वे थे। उनके पास किताबें, पत्रिकाएँ बहुत आती थीं। द्विवेदीजी ने कई बार कहा—मैं चाहता हूँ कि आकर ग्रन्थ छाँट कर अलग रख दिए जाएँ, शेष पुस्तकें अलग रहें। आकर ग्रन्थ की जरूरत बार-बार पड़ती है। कालजयी और सन्दर्भ ग्रन्थ। लेकिन इस ऊपरी मंजिल वाले कमरे में हम लोग नहीं पहुँच पाते थे। आँगन से लगे छोटे कमरे में भी कभी-कभी ही पहुँचते थे। एक बार जब पण्डितजी की आँखें खराब हो गई थीं तब चिट्ठी वगैरह लिखाने के लिए मैं बुला लिया जाता था।

पण्डितजी ने कहा, ''आओ एक किनारे बैठ जाओ। मेरा परिवार जन संकुल है।'' यह अपने परिवार के लिए उनका प्रिय विशेषण था। कभी कलम गायब, कभी कागज। यहाँ भरसक निर्मक्षित रहता है। चिड़िया का पूत नहीं आ पाता—फिर बोले ''खैर चिड़िया का कोई पूत तो कभी-कभार आ जाता है।'' कमरे में किताबें ही किताबें बेतरतीब, बिखरी पड़ी रहती थीं। वे जब पढ़ते थे तो कई किताबें एक साथ पढ़ते थे लेकिन पद्धति ऐसी थी कि एक किताब पढ़ने की प्रक्रिया में कई किताबों का पढ़ना हो जाता था।

—विश्वनाथ त्रिपाठी

देवनागरी टाइप अक्षर सर्वप्रथम 1667 में यूरोप में तैयार किये गए।

रामहल्ला, प्रिंसिपल वेनिस और जगन्नाथदास रत्नाकर

15 अप्रैल 1891

'टन-टन टन-टन-टन', हिन्दू भाइयों, रामजी का मन्दिर खोदा जा रहा है, आप लोग चलिये। टन-टन-टन रामजी का मन्दिर टन-टन-टन....

काशी में सफाई और पीने का पानी सुलभ कराने के लिए गंगा किनारे भदैनी पर जलकल बनाने की योजना बनी। भदैनी पर राम मन्दिर है। लोगों को लगा कि भदैनी पर स्थित प्राचीन राम मन्दिर तोड़ दिया जायगा। इस सन्दर्भ में काशी की जनता ने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध 1857 जैसा आन्दोलन शुरू कर दिया। भदैनी पर जगन्नाथदास (रत्नाकर) रहते थे, उन्हें इसकी वास्तविकता ज्ञात थी, आन्दोलनकारियों के बीच उन्हें समझाने का प्रयास करते। शासन को लगा कि जगन्नाथदास आन्दोलनकारियों को भड़का रहे हैं।

जगन्नाथदास उस समय क्वींस कॉलेज के छात्र थे। वे कई दिनों से कॉलेज नहीं आ रहे थे। उनके सहपाठी मित्र काली बाबू ने क्वींस कॉलेज के तत्कालीन प्रिंसिपल डॉ० ए० वेनिस से कहा—''सर जगन्नाथदास कई दिनों से कॉलेज नहीं आ रहे हैं। परीक्षा निकट है, क्या होगा?''

''तुम पता लगाओ क्या बात है?''

रात के अँधेरे में दोनों मित्र मिले। दूसरे दिन काली बाबू ने डॉक्टर वेनिस को सारा हाल बताया। डॉ० वेनिस शाम के धुँधलके में अपने को ढँके हुए काली बाबू को साथ लिए पिछवाड़े के रास्ते से जगन्नाथदास के मकान पर शिवाला आये। सड़क, गलियाँ अँधेरे में डूबी थीं। आतंक का जमाना था, लोग शाम होते ही घरों में दुबक जाते। प्रिंसिपल वेनिस दो घण्टे तक जगन्नाथदास से सारा हाल सुनते रहे।

दूसरे दिन प्रिंसिपल वेनिस ने कलेक्टर जेम्स ह्वाइट से कहा—''तुम्हारी पुलिस हमारे एक विद्यार्थी को नाहक परेशान किए हुए है।''

''क्या नाम है उसका?''

'जगन्नाथ दास।'

''अरे वह? उसे नाहक परेशान किया जा रहा है? आपको कुछ मालूम नहीं है। वही तो सारे खुराफातों की जड़ है, रिंग लीडर है, उसे हम हर्गिज नहीं छोड़ सकते।'' डॉ० वेनिस ने ह्वाइट को बहुत समझाया—''जो होना था वह हो चुका। तुमने बलवा दबा दिया, विजयी हुए। हमारा काम जिन्दगी बनाना है बिगाड़ना नहीं। अब क्षमा करो, भूल जाओ।''

''अच्छा, एक बार उसे हमारे पास भेज दीजिए।''

''तुम्हारे पास भेज दूँ? पकड़ लो तब? ऐसे वह बचा हुआ है।''

''नहीं पकड़ूँगा नहीं। मैं वादा करता हूँ, वारण्ट वापस कर दूँगा।''

''तब क्यों बुलाते हो?''

''वह बड़ा 'स्पिरिटेड' मालूम पड़ता है। हिन्दुस्तान का एक जाग्रत नौजवान है। एक बार उससे मिलने की इच्छा है।''

''वह तो तुमसे पहले कई बार मिल चुका है।'' अध्यापक ऊहापोह में थे।

''हाँ, मिल चुका है, पर उस समय मैंने उस पर ध्यान नहीं दिया था। अब दूसरी बात है।''

प्रिंसिपल वेनिस ने कहा—''अच्छी बात है।''

अच्छी तरह आश्वस्त होकर प्रिंसिपल वेनिस ने काली बाबू की मार्फत कहला भेजा कि कलेक्टर से मिल लें और जाते समय हमारे बंगले से होता जाय।

किराये की बन्द पालकी गाड़ी में सब खिड़की के दरवाजे चढ़ाकर बाबू जगन्नाथदास बैठे और ऊपर कोच बक्स पर कोचवान की बगल में काली बाबू डटे। रास्ते में कहीं मोहड़ा सँभालना पड़े तो? बंगले पर डॉक्टर वेनिस ने कहा—''तुम निर्भय होकर जाओ। हमारी बात हो चुकी है। जो पूछे, सच-सच बता देना। सिर्फ अपनी विद्रोह की योजना की बातें मत कहना। वह पूरी बातें नहीं जानता। शक ही शक है। तुम्हें कहने की जरूरत नहीं है। तुमने बलवा बचाने की, भीड़ को समझाने की कोशिश की, मगर भीड़ तुम्हें मारने को दौड़ी, यह जरूर कहना। सिर्फ जरूरी बातें कहनी चाहिए। जो जरूरी न हो, उसे नहीं कहना चाहिए। और हाँ, जरा अपना मिजाज काबू में रखना।'' कन्धे थपथपाते हुए प्रिंसिपल वेनिस ने आकर बड़ी ममता से गाड़ी पर सवार कराया।

उसी पर्दानशीन ढंग से, गाड़ी पर सवार वे कलेक्टर के बंगले पहुँचे। कलेक्टर जेम्स ह्वाइट डेढ़ घण्टे तक बातें करते रहे। बलवे का सारा हाल पूछा। निजी बातें पूछी। वारण्ट वापसी का परवाना लिखकर दे दिया। बाहर गाड़ी तक पहुँचा गये। मुस्कराते हुए हाथ मिलाकर विदा दी।

ऐसे थे विद्वान् प्रिंसिपल डॉ० ए० वेनिस और उनके छात्र जगन्नाथदास जो बाद में 'रत्नाकर' हुए।

पुस्तक मित्र

किताबें हमको देती ज्ञान
इनके बिना फैलता अज्ञान
इसलिए इनको बनाओ दोस्त
इनका करो सही उपयोग
ज्ञान से बड़ा ना धन कोई
ज्ञान बिना जीवन अधूरा
इसलिए इनको बनाओ दोस्त
यही है हमारी सच्ची साथी
देती हैं हमें संस्कार यही
सिखलाती अच्छा व्यवहार यही॥

—संजय कुमार 'सहज'

कथन

विष्णु प्रभाकर को सलाम

जीवनी साहित्य की कसौटी पर खरी उतरती है—विष्णु प्रभाकर की मूल्यवान कृति 'आवारा मसीहा'। विष्णुजी ने जिस सत्य का संधान किया है, वह अप्रतिम है और वह शरत के व्यक्तित्व का तटस्थ, किन्तु खुल कर किया गया अनुशीलन है।

'आवारा मसीहा' ग्रन्थ की रचना कर विष्णु प्रभाकर ने 70 के दशक में ही हिन्दी-बांग्ला के बीच एक मजबूत सेतु भी निर्मित किया था। 'आवारा मसीहा' का बांग्ला में भी अनुवाद हुआ है। इस ग्रन्थ के कारण विष्णुजी को महान जीवनीकार के रूप में चहुँदिश ख्याति मिली, किन्तु मूलत: वे कथाकार हैं, ठीक 'आवारा मसीहा' की तरह। 'जिन्दगी एक रिहर्सल', 'कौन जीता कौन हारा', 'इक्यावन कहानियाँ', 'जीवन-पराग' और 'आपकी कृपा है' विष्णु प्रभाकर के प्रमुख कहानी संग्रह हैं, तो 'निशिकांत', 'कोई तो' और 'अर्ध नारीश्वर' उनकी बहुचर्चित औपन्यासिक कृतियाँ हैं। उन्होंने नाटक, संस्मरण और यात्रा-वृत्तांत भी लिखे हैं। एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि बच्चों के लिए भी विष्णु प्रभाकर ने साहित्य रचना है। बच्चों के लिए लिखी उनकी एक किताब 'गल्प सुनो' बांग्ला में भी प्रकाशित-प्रशंसित हुई है। इसमें कुल 23 कहानियाँ हैं। सभी एक से बढ़कर एक। उदाहरण के लिए 'दुष्ट बुद्धि और धर्म बुद्धि' दो भाइयों की कहानी है, जिसमें दुष्ट बुद्धि नामक भाई पैसे के लोभ में अपने ही भाई से बेईमानी करता है। कथाकार ने बताया है कि बेईमानी का फल हमेशा खराब होता है। विष्णु प्रभाकर उम्र में मुझसे बड़े हैं। वे 95 वर्ष के हैं। उन जैसे साहित्य साधक को देख बरबस श्रद्धा से शीश नत हो जाता है। उन्हें सलाम करती हूँ।

—महाश्वेता देवी

आज के दौर में कविता वस्तुत: बाजार में खड़ी सदृश है, मगर कविता की समझ रखने वाले उपभोक्ता बहुत कम हैं। इसके विपरीत भी तथ्य सम्भव हैं, पर यथार्थतया यही सच है।

हर युग में कविता को बड़े समुदाय तक पहुँचाने के लिए एक और आधार की आवश्यकता होती है। स्वतंत्रता से पहले कवियों

के पास स्वाधीनता आन्दोलन का बड़ा भारी आधार था। सारे कवि कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी स्तर पर उससे संचालित होते थे। मुझे याद है कि दिनकरजी पढ़ते थे, माखनलाल चतुर्वेदी पढ़ते थे, तो कविता भीतर तक पहुँचती थी। तो वह एक आन्दोलन का आधार मौजूद था। अब दिक्कत यह है कि पूरी कविता बिना किसी आन्दोलन के लिखी जा रही है। आन्दोलन एक जागरुकता पैदा करता है। उसकी प्रकृति क्या है, कैसी है, यह एक अलग सवाल? आज यह आधार नहीं है हमारे पास। इसमें होता क्या है कि हम एक छोटे से दायरे के बीच आपरेट करते हैं।

कविता कमोडिटी नहीं है, न हो सकती है। कविता का अस्तित्व जो है वह जैविक है। कहीं-न-कहीं हमारी मानसिकता में, हमारे अस्तित्व में व्याप्त है। कविता की ताकत ही है कि बाजार उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। बाजार में कविता पहुँच ही नहीं पाती है, यह कविता की सबसे बड़ी ताकत है। कविता जब तक है, बाजार से टक्कर लेती रहेगी। **—केदारनाथ सिंह**

लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों या गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।

—ऋचा उपाध्याय, बंगलोर

किताब

हम किताब के साथ बढ़े हैं,
लेकर इसे पहाड़ चढ़े हैं।
यही नदी है, यह सागर है,
सभी ज्ञान की यह गागर है।
यह तुलसी है, यह कबीर है,
सच्चा मित्र, अचूक तीर है।
धोखा, झूठ, फरेब नहीं है,
इसमें कोई ऐब नहीं है।
यह मन में सपने बुनती है,
यह मन की बातें सुनती है।
हम इसको लेकर खुश रहते,
खेल खेल अनचाहा सहते।
इससे जब करते हैं बातें,
हँसता दिन हँसाती हैं रातें।
हम किताब के क्या गुण गायें,
इसको बस हम पढ़ें पढ़ायें।

—डॉ० श्रीप्रसाद, वाराणसी

त्रिलोचन दुःख के सागर में

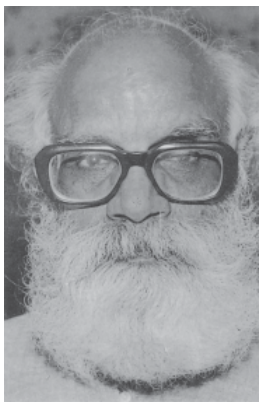

प्रगतिशील हिन्दी- कविता के पाँच महारथियों में से अन्तिम स्तम्भ त्रिलोचन ने अपने प्रथम कविता संग्रह 'धरती'-1945 में लिखा—'आज मैं अकेला हूँ / अकेले रहा नहीं जाता... सुख-दुःख एक भी अकेले सहा नहीं जाता।' त्रिलोचन इन दिनों कुछ वर्षों से सचमुच अकेले हैं। मुक्तिबोध सृजनपीठ, सागर विश्वविद्यालय की अपनी दूसरी अध्यक्षीय पारी के दौरान पेट का अल्सर अचानक फट जाने से आकस्मिक शल्य क्रिया द्वारा वे किसी तरह से बच सके।

सागर छोड़कर त्रिलोचन हरिद्वार से सटे ज्वालापुर में अपने छोटे पुत्र के परिवार में आये। कनिष्ठ पुत्र की दिल्ली में अखबार की नौकरी, पौत्र-पौत्री की बाहर की पढ़ाई और पुत्रवधू की हरिद्वार कोर्ट में वकालत। बेहद तंग, बन्द गली के आखिरी मकान के अन्तिम कमरे में दिनभर निपट अकेले त्रिलोचन। 'पथ पर चलते रहो निरन्तर... पथिक चरण-ध्वनि से दो उत्तर' लिखने और जीने वाले कवि त्रिलोचन को विगत पाँच साल से ज्यादा इस भीषण एकान्त को सहते हुए जैसे एक युग बीत गया। त्रिलोचन की बोलती लगभग बन्द है। ज्वालापुर में त्रिलोचन के गिरते स्वास्थ्य की देखभाल उनकी पुत्रवधू उषा सिंह ही करती आयी हैं। रुड़की में पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ० सुरेन्द्र शर्मा ने भी त्रिलोचन के अकेलेपन को दूर करने में योगदान किया है।

ज्वालापुर में एक दिन अचानक नंगे पाँव त्रिलोचन काफी दूर तक निकल गये। पुत्रवधू और चंद हितैषियों ने खोजबीन की। एक पुलिया पर बैठे मिले। कहा—बनारस जाना चाहता हूँ। त्रिलोचन के अपने और कवि-मन के तार उनके गाँव सुल्तानपुर जिले में चिरानीपट्टी से जुड़े हैं। बनारस में बीता चार दशक का उनका रचनात्मक हलचलों और हर्ष-विषाद से भरपूर समय उनकी यादों में बराबर है। भोपाल और सागर में बीते उनके अच्छे दिन पीछे चले गये। ज्वालापुर-हरिद्वार की उस गली के निचाट सूनेपन में बैठे त्रिलोचन को जिन चंद व्यक्तियों ने देखा है वे उस पीड़ा को सहज ही समझ सकते हैं।

फिलहाल नब्बे की उम्र छू रहे त्रिलोचन को कोई गम्भीर बीमारी नहीं है। मई, 2005 में देहरादून अस्पताल और हाल में वे हरिद्वार के जिला अस्पताल में भर्ती रहे। श्रवणशक्ति भी कम हुई है। अखबार की सुर्खियों पर सुबह-सवेरे आज भी निगाह डाल लेते हैं। इन्द्रियाँ शिथिल हुई हैं। उठना-बैठना अब सहारा लेकर हो पाता है। स्मृति और पहचान की क्षमता पर भी वार्धक्य का असर है। संवाद भी अब न के बराबर ही। जीवन की सांध्य बेला।

संस्थाएँ हैं, लेकिन निरर्थक। परिवार है लेकिन असमर्थ। जिधर देखिए, उधर दुःख ही दुःख है। त्रिलोचन दुःख के सागर में हैं, लेकिन फिर भी शायद आत्मस्थ! संप्रति दिल्ली से सटे गाजियाबाद के वैशाली में सेक्टर नं० 3 के 667 मकान नम्बर में त्रिलोचन महीने भर से हैं। उनके आत्मीय वरिष्ठ रचनाकार विष्णुचंद्र शर्मा जब मिले तो त्रिलोचन के पूछने पर बोले, 'डायरी छह साल से नहीं लिखी।' त्रिलोचन के पत्रकार बेटे अमित के डेढ़ कमरे के फ्लैट के भीतर-बाहर महानगरीय गहमागहमी के बावजूद त्रिलोचन के लिए दिन-तारीख का जैसे अब मतलब नहीं रहा। बनारस की स्मृतियाँ अब भी रह-रह कर उन्हें घेरती हैं। कवि त्रिलोचन के नब्बे पार स्वस्थ जीवन की हम कामना करते हैं।

त्रिलोचन और उनका साहित्य

काव्य : धरती (1956), गुलाब और बुलबुल (1956), दिगंत (1957), ताप के तार हुए दिन (1980), शब्द (1980), उस जनपद का कवि हूँ (1981), अरघान (1983), अनकहनी भी कुछ कहनी है (1985), तुम्हें सौंपता हूँ (1985), फूल नाम है एक (1985), सबका अपना आकाश (1987), चैती (1987), अमोला (1990), मेरा घर (2002), जीने की कला (2004)। **कहानी संग्रह :** देशकाल (1986)। **डायरी :** रोजनामचा (1992)। **आलोचना निबंध :** काव्य और अर्थबोध (1995)। **सम्पादक :** मुक्तिबोध की कविताएँ (1991)। त्रिलोचन पर कुछ अन्य पुस्तकें प्रकाशित हैं—**प्रतिनिधि कविताएँ :** त्रिलोचन (1985)/सम्पादक : केदारनाथ सिंह, साक्षात त्रिलोचन (1990)/कमलकांत द्विवेदी - दिविक रमेश, त्रिलोचन के बारे में (1994)/सम्पादक : गोविंदप्रसाद, त्रिलोचन संचयिता (2002)/सम्पादक : ध्रुव शुक्ल, मेरे साक्षात्कार : त्रिलोचन (2004)/सम्पादक : श्याम सुशील।

हिन्दी निबंध और निबंधकार

डॉ० रामचन्द्र तिवारी

संस्करण : 2007

ISBN :
978-81-7124-565-9
विश्वविद्यालय प्रकाशन,
वाराणसी

मूल्य : 250.00

'अब तो बात फैल गई' कान्तिकुमार जैन की नई संस्मरण पुस्तक

समकालीन हिन्दी संस्मरण लेखन के क्षेत्र में कान्तिकुमार जैन का नाम कनीनिका उँगली पर गिना जाता है। 75 पार के कान्तिकुमार जैन ने संस्मरणों को नई ऊँचाई, नई गहराई और नई व्यापकता दी है। नई हीरो होंडा की तरह पहिली ही किक में स्टार्ट होकर रफ्तार पकड़ने वाले और पाठक को बिना थकाये गंतव्य तक पहुँचाने वाले कान्तिकुमार जैन के संस्मरणों की नई पुस्तक 'अब तो बात फैल गई' उनकी 'लौट कर आना नहीं होगा', 'तुम्हारा परसाई' और 'जो कहूँगा सच कहूँगा' की ही रोचक, पठनीय, चौंकाने वाली और रचनात्मकता से भरपूर है। यह केवल संस्मरणों का ही संकलन नहीं है अपितु नये सिरे से संस्मरणों की सैद्धान्तिकी भी रचती है। इस पुस्तक में लेखक ने संस्मरण विधा के नये प्रयोग भी किये हैं। किसी को बिन देखे या मिले उसके परिवेश को केन्द्र बनाकर क्या संस्मरण लिखे जा सकते हैं? कान्तिकुमारजी का उत्तर है—हाँ। इस पुस्तक में संकलित नज़ीर अकबराबादी, सुभद्राकुमारी चौहान और जयशंकर प्रसाद के आख्यान इसके प्रमाण हैं। लेखक ने डॉ० हरिसिंह गौर, भगीरथ मिश्र, राजेन्द्र यादव, परसाई, कमलेश्वर, मैत्रेयी पुष्पा जैसे व्यक्तियों पर संस्मरण लिखते समय उनकी मनोसंरचना की पड़ताल तो की ही है, उनके साहित्यिक-सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को भी खँगाला है। अपनी तुर्श, तीखी और पैनी टिप्पणियों के साथ। याद, विवाद और संवाद खण्डों में विभाजित यह पुस्तक हिन्दी साहित्य और भाषा के मुद्दों से भी दो चार होती है। इस पुस्तक के पन्नों में आपको अटलबिहारी वाजपेयी, बिल क्लिंटन, हरिवंशराय बच्चन, अमिताभ, विद्यानिवास मिश्र, अशोक वाजपेयी, विष्णु खरे, रवीन्द्र कालिया, शिवकुमार मिश्र, कमला प्रसाद, भारत भारद्वाज जैसे लोग बराबर चहलकदमी करते मिल जायेंगे। कमलेश्वर जैसों के साथ मैत्रेयी पुष्पा, ईसुरी, सानिया मिर्जा जैसे इस पुस्तक में व्यक्ति नहीं रह जाते; विभिन्न ग्रंथियों, प्रवृत्तियों और मानसिकताओं के प्रतीक बन जाते हैं। इस पुस्तक में आपको व्यक्तियों के भित्ति चित्र तो मिलेंगे ही, नाना छोटे-बड़े, चर्चित एवं विस्मृत साहित्यकारों, कलाकारों, अध्यापकों, राजनेताओं, खिलाड़ियों और पत्रकारों के जीवंत नखचित्र भी मिलेंगे।

संवाद खण्ड में लेखक से रमेशदत्त दुबे, देवेन्द्र आर्य, साधना अग्रवाल और आनन्द त्रिपाठी ने लम्बी बातचीत की है जिसमें लेखक की मान्यताओं और रचनात्मकता के अनेक पहलू बड़ी बेबाकी से उद्घाटित हुए हैं।

इस पुस्तक के आलेख हिन्दी की शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर जहाँ एक ओर विविध रुचियों वाले पाठकों को आकर्षित कर चुके हैं, वहीं दूसरी ओर समीक्षकों के बीच संस्मरणों में 'क्या कहा जाये और कैसे कहा जाये' जैसे गम्भीर विवादों को जन्म देने वाले भी सिद्ध हुए हैं। यह अच्छी बात है कि इस पुस्तक में, अपनी अन्य पुस्तकों की भाँति, लेखक जहाँ अन्यों के गोपन को ओपन करता है, वहीं अपने बारे में भी कुछ छिपाता नहीं है।

अपने समय के मूल्यों की भीतरी परतों को प्रत्यक्ष करने वाली यह पुस्तक और कुछ नहीं तो केवल बतरस के लिए, केवल भाषा की उछालों के लिए भी पठनीय है।

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी की परम्परा के अनुसार सुरुचिपूर्ण साज-सज्जा में प्रकाशित 260 पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य दो सौ पचास रुपये है।

पुस्तकालयों, शिक्षा संस्थाओं

के लिए

साहित्यिक तथा विभिन्न विषयों की हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत पुस्तकों का विशाल संग्रह

तीन हजार वर्ग फुट में विशाल शोरूम

विश्वविद्यालय प्रकाशन

विशालाक्षी भवन, चौक
(चौक पुलिस स्टेशन परिसर के पार्श्व में)
वाराणसी - 221 001 (उ०प्र०)
Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
E-mail: sales@vvpbooks.com

स्मृति-शेष

उर्दू लेखिका कुर्रतुल ऐन हैदर का निधन

साहित्य अकादमी की फेलो तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित उर्दू की मशहूर लेखिका एवं पत्रकार **कुर्रतुल ऐन हैदर** का मंगलवार, 21 अगस्त 2007 को निधन हो गया।

वह 80 वर्ष की थीं और पिछले कुछ दिनों से बीमार चल रही थीं। उनका निधन नोएडा के एक निजी अस्पताल में हुआ। सुश्री हैदर मंटो, इस्मत चुगताई, कृष्ण चंदर की पीढ़ी की लेखिका थीं और वह हिन्दी-उर्दू की मिली-जुली संस्कृति की आखिरी कड़ी थीं। 'आग का दरिया' जैसा मशहूर उपन्यास लिखने वाली सुश्री हैदर का जन्म 1927 में अलीगढ़ में हुआ था। उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार 1967 में तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार 1989 में मिला। वह बीबीसी से भी जुड़ी थीं और द डेली टेलीग्राफ की रिपोर्टर व इंप्रिंट पत्रिका की प्रबन्ध सम्पादक भी रहीं। वह इलेस्ट्रेड वीकली की सम्पादकीय टीम में भी थीं।

कुर्रतुल ऐन हैदर हिन्दी साहित्य जगत की प्रसिद्ध लेखिका महादेवी वर्मा, कथाकार शिवानी और पंजाबी साहित्य की मशहूर लेखिका अमृता प्रीतम की तरह ही पूरी दुनिया में जानी जाती थीं। उर्दू अदब में एकमात्र यही एक ऐसी लेखिका थीं जिन्हें देश का सर्वोच्च सम्मान प्राप्त था।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के **प्रो० बलराज पाण्डेय** ने शोक व्यक्त करते हुए कहा कि कुर्रतुल-एन हैदर ने भारतीय संस्कृति को व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। अपने प्रख्यात उपन्यास 'आग का दरिया' में उन्होंने ढाई हजार वर्ष पूर्व के वैदिक युग को दिखाया है। उपन्यास में उन्होंने बताया है कि प्राचीनकाल में भी भारत में ज्ञान की खोज में लोग लगे रहते थे। उपन्यास में दूसरे काल के रूप में उन्होंने मुगलकाल को लिया है। अरब से आने वाला पात्र कमालुद्दीन यहाँ जौनपुर में आकर एक पुस्तकालय में काम करता है। उसका एक साथी उदय सिंह भी है और दोनों साथ रहते हैं। यानि यहाँ भी ज्ञान की खोज और हिन्दू मुस्लिम भाईचारे की मिसाल पेश की गई है। तीसरा काल अंग्रेजों का है जिसमें उन्होंने दिखाया है कि अंग्रेज भारतीयों से अपने को जोड़ने की बजाय यहाँ के लोगों को लूटने में ज्यादा लगे रहे। चौथाकाल देश के विभाजन का है। देश विभाजन की विडम्बनाओं को उपन्यास में बड़ी बारीकी से दिखाया गया है। डॉ० पाण्डेय ने कहा कि हालांकि वह 80 वर्ष की हो चुकी थीं लेकिन उनके निधन से पूरे भारतीय साहित्य में एक बड़ी रिक्तता आ गयी है जिसे भरपाना नामुमकिन होगा।

सम्मान-पुरस्कार

डॉ० अनिल गोयल पुरस्कृत

कवि **डॉ० अनिल गोयल** की पुस्तक 'हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं साँगी' को हरियाणा प्रदेश सरकार द्वारा संचालित हरियाणा साहित्य अकादमी (पंचकूला) पुरस्कृत करेगी। इस पुरस्कार की राशि 21,000 रुपये है।

डॉ० टी० मोहन सम्मानित

हिन्दी साहित्य अकादमी, हैदराबाद के अध्यक्ष, 'संकल्प' त्रैमासिक के सम्पादक व उस्मानिया विश्वविद्यालय के पूर्व हिन्दी-विभागाध्यक्ष डॉ० टी० मोहन सिंह पिछले दिनों पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद में रहे। दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रमुख प्रतिष्ठापक माने जाने वाले डॉ० टी० मोहन ने गाजीपुर के साहित्यकारों से उनके घर जाकर मुलाकात भी की। डॉ० विवेकी राय, डॉ० पी०एन० सिंह, जितेन्द्रनाथ पाठक, डॉ० मान्धाता राय व गोरखनाथ तिवारी के यहाँ रुके भी। साहित्यिक संस्था 'संगम' की ओर से पूर्वांचल के अनेक साहित्यकारों ने डॉ० टी० मोहन को सम्मानित किया। इस अवसर पर बोलते हुए तेलुगू मूल के डॉ० टी० मोहन ने कहा कि ''महात्मा गाँधी द्वारा चलाये गये राष्ट्रभाषा प्रचार आन्दोलन से प्रेरित होकर मैंने हिन्दी सीखी व पढ़ी। आज दक्षिण में जो लोग हिन्दी का विरोध करते हैं, उनके बच्चे घर में हिन्दी पढ़ते हैं। प्रत्येक वर्ष लाखों हिन्दी छात्र परीक्षाओं में बैठते हैं। राजनीति के ही कारण थोड़ा-बहुत हिन्दी-विरोध देखने को मिलता है।''

प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम (1857) सम्मान समारोह

चेन्नई की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था साहित्यानुशीलन समिति के तत्त्वावधान में गुरुवार, 9 अगस्त 2007 को नगर के राजेन्द्र बाबू सभागार में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की सार्द्ध शताब्दी के उपलक्ष्य में स्वातंत्र्य चेतना समारोह का विशेष आयोजन हुआ, जिसमें प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने 'भारतीय साहित्य में स्वातंत्र्य चेतना' विषय पर अपना अनुशीलनात्मक आकलन प्रस्तुत किया। हिन्दी-तमिल के लब्धप्रतिष्ठ लेखक **डॉ० एन० सुंदरम** की अध्यक्षता में संचालित समारोह में वयोवृद्ध विद्वान् एवं स्वतंत्रता सेनानी **श्री टी०एस० राजु शर्मा**, स्वतंत्रता सेनानी साहित्यकार **श्री रुक्माजी राव अमर**, सुप्रसिद्ध उपन्यासकार **श्री बालशौरि रेड्डी,** वरिष्ठ समीक्षक **डॉ० एम० शेषन** और प्रसिद्ध लेखिका **डॉ० भवानी अश्विनी कुमार** का शाल ओढ़ाकर सम्मान किया गया। साहित्यकारों द्वारा स्वातंत्र्य चेतना से सम्बन्धित सात चिंतनपूर्ण आलेख प्रस्तुत किये गये। तमिलनाडु में स्वातंत्र्य चेतना (श्री टी०एस० राजु शर्मा), माखनलाल चतुर्वेदी का राष्ट्रीय भावना-प्रधान काव्य (श्री रुक्माजी राव अमर), तेलुगु साहित्य में राष्ट्रीय चेतना (डॉ० बालशौरि रेड्डी), तमिल कवियों का राष्ट्रीय अवदान (डॉ० एम० शेषन), स्वातंत्र्य चेतना और हिन्दी कविता (डॉ० इंदरराज बैद), हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना (डॉ० विद्या शर्मा) और तमिल पत्र-पत्रिकाओं में अनुगुंजित राष्ट्रीय जागरण का स्वर (डॉ० ए० भवानी)। इस अवसर पर प्रतिष्ठित समाजसेवी, जयप्रकाश-प्रभावती ट्रस्ट के प्रबन्ध न्यासी एवं साहित्यानुशीलन समिति के संरक्षक बाबू शोभाकांतदास ने अपने प्रेरणाप्रद उद्‌गार व्यक्त करते हुए आशा व्यक्त की कि साहित्यकार उच्चादर्शों से युक्त लेखन द्वारा समाज, राष्ट्र और मानवती की निरन्तर सेवा करते रहेंगे। इस अवसर पर श्रीमती सी०बी० प्रसाद, डॉ० मधु धवन, श्रीमती अवतार कौर विरदी, डॉ० पी०के० बालसुब्रह्मयन, डॉ० एम० लोकनाथन, श्री रामरतन बागड़ी, श्री नरपतमल मेहता, श्री रमेश गुप्त नीरद, श्री जवाहरलाल मधुकर, श्री प्रहलाद श्रीमाली, श्री पी०आर० वासुदेवन आदि नगर के गणमान्य कवि, लेखक, पत्रकार उपस्थित थे।

आपका पत्र

'भारतीय वाङ्मय' का हर अंक एक अच्छी पत्रिका का मजा देता है। कभी-कभी तो इसमें अन्यत्र से प्राप्त न हो सकने वाली संग्रहणीय सूचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। डॉ० बच्चन सिंह की दुर्लभ टिप्पणियों के सारांश से भी बहुत बार लाभान्वित हुआ हूँ। **—लीलाधर जगूड़ी,** देहरादून

'भारतीय वाङ्मय' के सीमित स्थान में असीमित जानकारी भर देने की कला अति प्रशंसनीय है। अकेले 'भारतीय वाङ्मय' हिन्दी तथा अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधि का बोध कराने के लिए सक्षम, समर्थ और पर्याप्त है। ज्ञानवर्धक सम्पादकीय आलेख मात्र 12 से 20 पृष्ठों की पत्रिका में क्या नहीं है? सब कुछ मिल जायगा। इस पुनीत कार्य में आपका कौशल श्रम स्तुत्य है। मेरी दृष्टि में तो हर अंक ज्ञानवर्धक और संग्रहणीय रहता है।

—डॉ० रामअवतार पाण्डेय, वाराणसी

'भारतीय वाङ्मय' के माध्यम से भारत के कोने-कोने में बसे रचनाकार एवं रचनाओं की पूरी-पूरी जानकारी हो पाती है। सम्पादकीय तो अँधेरे का चिराग है। साहित्य जगत की यह स्तरीय पत्रिका ज्ञान-विज्ञान तथा नूतन जानकारियों के साथ समग्रता को समेटे गागर में सागर है।

—यदुनाथ सेउटा, कोलकाता

'भारतीय वाङ्मय' (मासिक) भारतीय साहित्य, पत्रिका एवं प्रकाशनों की जानकारी देने वाली सर्वश्रेष्ठ पत्रकारिता एवं प्रकाशनों की जानकारी देनेवाली सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। नये-पुराने लेखकों, साहित्यकारों एवं पत्रकारों के लिए वरदान है।

उत्तराखण्ड एडीटर्स एसोसिएशन इस पत्रिका के प्रकाशन व सम्पादक को बधाई देता है।

—डॉ० रवि रस्तोगी, मुख्य सचिव
उत्तराखण्ड एडीटर्स एसोसिएशन
वीरभद्र (ऋषिकेश)

सम्पादकीय के बहाने आपने हाल ही में अमेरिका में सम्पन्न 'आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन' की दशा और दिशा पर गम्भीर विचार प्रस्तुत किये हैं। सचमुच हिन्दी के नाम पर ऐश करने का साधन मात्र बनाकर रख दिया इसे कुछ लोगों ने। सरकार को ऐसे लोगों पर ध्यान देना चाहिये। सम्पादकीय में आपने हिन्दी की दशा सुधारने के लिये भी कई बहुमूल्य एवं रचनात्मक सुझाव दिये हैं, इनका भी स्वागत किया जाना चाहिये।

—जय चक्रवर्ती, राजभाषा अधिकारी
रायबरेली

'भारतीय वाङ्मय' अगस्त 2007 अंक में 'आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन यानी हिन्दी का अन्तरराष्ट्रीय जलसा' सम्पादकीय पढ़ा। बिलकुल ठीक है। प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में भाग ली थी। बाकी सम्मेलन में सम्मिलित नहीं हुई। कारण स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं को अनभिज्ञ किया। इस बार सूचना तो दी, देरी से। कुछ लोग अपने खर्चे से, खुद मैं भी अपने माने मेरे परिवार के कुछ सदस्य विदेश में टोरंटो-लास एंजलीस में हैं उन लोगों ने बुला लिया। उनके कारण दिनांक 13 से 15 जुलाई 2007 न्यूयार्क में शामिल हुई। खेद से बताना पड़ रहा है कि जब से विदेश मंत्रालय ने यह कार्य अपने ऊपर लिया है तब से यही बात हो रही है। पहले घर में दिया जलायें बाद में पड़ोसियों को दिया जलाने की प्रेरणा देनी है। भारत में ही आज तक हिन्दी का कार्य नगण्य है। केन्द्र से राज्यों के साथ व्यवहार अंग्रेजी में हो रहा है, कब यह प्रथा कम होगी और हर राज्य में हिन्दी का सचिवालय खुलेगा। आपके लेख से मैं प्रभावित हुई।

—बी०एस० शांताबाई, प्रधान सचिव
कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, बेंगलोर

खजुराहो की मूर्तिकला के सौन्दर्यात्मक तत्व

डॉ० शरद सिंह

संस्करण : 2006

ISBN : 81-7124-494-7

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : 400.00

अत्र-तत्र-सर्वत्र

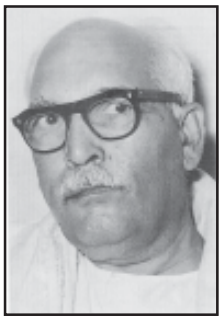

आचार्य हजारीप्रसाद की जन्मभूमि

यह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म शताब्दी वर्ष है। द्विवेदीजी का जन्म 19 अगस्त 1907 को उत्तर प्रदेश बलिया जिले के भारत दुबे का छपरा, ओझवलिया ग्राम में हुआ था। देश उनकी जन्मशताब्दी मना रहा है। जन्मशताब्दी पर विश्वविद्यालयों में समारोह आयोजित हो रहे हैं, स्मारिका निकाली जा रही है; किन्तु उनके खण्डहर हो रहे मकान के नाम पर सिर्फ दरवाजे की चौखट है, उसकी सुध किसी को नहीं।

गाँव में आचार्यजी ने एक कमरा बनवाया था। यही कमरा उनकी मौजूदगी की गवाही देता है। इस कमरे में आचार्यजी के पुराने बक्से रखे हुए हैं, जिसमें वह जरूरी कागजात रखते थे। जब आचार्यजी जिन्दा थे, गाँव में विशिष्टजनों का तांता लगा रहता था। आचार्यजी के गाँव में उनके जीवन से सम्बन्धित शिलापट्ट अवश्य लगा है।

खाली कहने की बात है

वर्ष 2007, एम०ए०, प्रथम वर्ष, हिन्दी साहित्य की मार्च महीने की एक क्लास। निर्धारित पाठ्यक्रम में आगे बढ़ने को मैं उद्यत और छात्र-छात्राएँ परीक्षा के इम्पार्टेण्ट प्रश्नों को जान लेने पर आमादा। निर्धारित पाठ्यक्रम में, जो न समझ में आ रहा हो, उसे पूछ लेने के मेरे निर्देश को बेहूदा दृष्टिकोण करार देने की पूरी फिजाँ। अन्ततः क्लास-रूम को साथ रखते हुए आगे बढ़ने की यह योजना मैंने ली—

निर्धारित अपने पाठ्यक्रम पर बनने वाले सवालों को पहले मैंने रेखांकित किया। इस बात को संप्रेषित करने पर भी मेरा जोर बना रहा कि विद्यार्थियों को लगता है कि उन्हें उत्तर नहीं आता, जबकि वास्तविकता यह होती है कि उन्हें प्रश्न ही समझ में नहीं आता। हर प्रश्न को विस्तार से समझाने के बाद, फिर यह आह्वान किया कि अब जिस प्रश्न का उत्तर जिसे न समझ में आ रहा हो, वह पूछ ले, मैं उत्तर वाले संकेत भी दे दूँगा लेकिन प्रश्न का उत्तर बोलकर नहीं लिखाऊँगा। कुछ छोटी-मोटी बातें पूछने के बाद, कमरे में खामोशी फैल गई। समय भी लगभग बीत ही गया था। मैं बचे पाठ्यक्रम को अगले टर्न के लिए छोड़ते हुए क्लास से निकलने की तैयारी में टेबुल पर से अपनी पुस्तकें समेटने लगा। इसी बीच फिर किसी ने पूछ ही लिया कि इस वर्ष क्या आयेगा?

यह कहने पर कि इसकी जानकारी मुझे नहीं है और यदि होती भी तो मैं नहीं बताता, यह सिर्फ आपके वास्ते ही नहीं है, अपने बेटा-बेटी के लिए भी यह काम नहीं कर सकता। क्लास के भीतर से मुँह नीचे किए ही किसी छात्र की आवाज़ आई—**'खाली कहने वाली बात है।'**

यह बात क्या आई कि मेरी बोलती ही बन्द हो गई। अनेकानेक ऐसी बातें मेरे जेहन में भी थीं जो मेरे मुँह से निकल पड़े सामान्य सिद्धान्त की चिन्दी-चिन्दी उड़ा देने के लिए पर्याप्त होतीं। सिर नीचे किए अब कमरे से बाहर जाने का मार्ग ही शेष बचा था। अध्यापकीय कार्य में, बोलती बन्द हो जाना, मेरा नज़र में, कोई सामान्य बात नहीं है। संवाद बनाने से बचते चलने में अध्यापन चल भी सकता है क्या!

—प्रो० जनार्दन, हिन्दी विभाग
दी०द०उ० गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

हिन्दी

यह मेरी माँ की भाषा है
यह मेरी भाषा माँ है
जैसे—गंगा माँ है
जैसे—धरती माँ है
माँ है यह

मेरी इन सभी माँओं ने
मुझे समान रूप से प्यार दिया है
मेरा पालन-पोषण, परिष्कार किया है
जीवन, धर्म, कर्म, संस्कार दिया है

और जहाँ तक बात
मेरी भाषा माँ हिन्दी की है
सोचने-समझने और अभिव्यक्त
करने की शक्ति
मुझे इसी ने दी है

इसी ने दिये हैं
मेरी सीधी-सादी वाणी को
रस, छन्द, अलंकार
इसी का है यह शब्द संसार
जिसमें उड़ा करती हैं मेरी भावनाएँ
कल्पनाओं के पंख पसार
नंदन वन से
लंदन तक
एक तार।

—केशव शरण

संगोष्ठी/लोकार्पण

नामवर की धरती

''नामवर की धरती से ज्यादा उचित है कहें धरती के नामवर। उन्होंने धरती से ऊपर अपने कदम कभी नहीं बढ़ाये, चाहे उनका जितना सम्मान किया गया हो। कभी भी किसी को छोटा समझने की कोशिश उन्होंने नहीं की।'' उपर्युक्त बातें प्रगतिशील लेखक संघ के महासचिव कमला प्रसाद ने युवा कवि श्रीप्रकाश शुक्ल द्वारा लिखित पुस्तक 'नामवर की धरती' का लोकार्पण करते हुए कहा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला संकाय प्रेक्षागृह में 'नामवर की धरती' पर टिप्पणी करते हुए प्रख्यात समालोचक नामवर सिंह ने भावपूर्ण उद्‌बोधन में कहा कि आखिर, क्यों श्रीप्रकाश शुक्ल ने अपनी किताब का नाम 'नामवर की धरती' रखा क्योंकि काशी में तो उनके लिए दो गज़ जमीन भी नहीं है। बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले, फिर भी यह विश्वास है कि ज़मीन ना मिली हो लेकिन काशी का आसमान हमारे सिर पर बराबर रहा है। निराला की एक कविता पंक्ति 'आकाश बदलकर बना मही' को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा कि काशी ने सम्मान भी दिया है तो संघर्ष की क्षमता भी दी है।

श्रीप्रकाश शुक्ल ने कहा कि यह आलोचक के रूप में नहीं एक पाठक के रूप में लिखी गयी पुस्तक है और उसमें भी एक ऐसा पाठक जो 'तत्वान्वेषी' नहीं है वह 'कृती' पाठक है। बीएचयू हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो० कुमार पंकज ने कहा कि नामवरजी हिन्दी के सिद्ध आलोचक होने के साथ-साथ सर्वश्रेष्ठ वक्ता भी हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य को वृहतर क्षेत्र में ले जाने का दायित्व नामवरजी ने बखूबी निभाया है। युवा कवि एवं नाट्य समीक्षक आशीष त्रिपाठी ने कहा कि श्रीप्रकाश शुक्ल की यह पुस्तक मूलतः नामवरजी की स्वीकारोक्ति की पुस्तक है जिसमें उनके व्यक्तित्व व कृतित्व को समग्रता में समझने की एक विनम्र कोशिश है। 'पक्षधर' पत्रिका के सम्पादक विनोद तिवारी ने कहा कि श्रीप्रकाश शुक्लजी मूलतः कवि हैं। इसलिए उनकी इस पुस्तक की भाषा अच्छी बन पड़ी है। यह पुस्तक

नामवर सिंह के बारे में एक कवि की अपनी भावना है।

पुस्तक लोकार्पण समारोह की अध्यक्षता कमलेशदत्त त्रिपाठी ने की। संचालन संजय श्रीवास्तव ने किया और धन्यवाद ज्ञापन प्रो० चौथीराम यादव ने किया।

दूसरे सत्र का संचालन श्रीप्रकाश शुक्ल ने किया और धन्यवाद ज्ञापन शिवकुमार 'पराग' ने किया। इस अवसर पर डॉ० चन्द्रबली सिंह, अष्टभुजा शुक्ल, राजेन्द्रकुमार, कृष्णमोहन, एल. उमाशंकर सिंह, जयप्रकाश धूमकेतु, प्रो० दीपक मल्लिक, प्रो० विजय बहादुर सिंह, प्रो० शुभा राव, आनंद प्रकाश, मनीष शर्मा, रामाज्ञा शशिधर, मनोज सिंह, प्रभाकर सिंह, विनय सिंह, डॉ० सरोज तिवारी, अनुराधा बनर्जी, डॉ० गया सिंह, कथाकार काशीनाथ सिंह, रामदेव सिंह, अजय मिश्र, रामजी सिंह, संजय सिंह उपस्थित थे।

विश्व हिन्दी सम्मेलन
बाल साहित्य पर चर्चा

आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन, न्यूयार्क में, हिन्दी बाल साहित्य पर वैश्विक सन्दर्भ में चर्चा, एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही। पहली बार हिन्दी बाल साहित्य को पूरा एक सत्र समर्पित किया गया। विश्व में हिन्दी के बाल पाठकों को बल साहित्य और पाठ्य-पुस्तकों में ऐसी सामग्री पढ़ने को मिले जो उनका भाषा ज्ञान बढ़ाने के साथ-साथ उन्हें भारतीयता से जोड़कर रखे, यही इस सत्र की चर्चा का मुख्य विषय था। सत्र की अध्यक्षता 'चंदामामा' के पूर्व सम्पादक **बालशौरि रेड्डी** ने की और मुख्य वक्ता सुप्रसिद्ध कथाकार मृदुला गर्ग थीं। **डॉ० हरिकृष्ण देवसरे** ने अपने वक्तव्य में कहा कि आज हिन्दी का जो नया प्रायोगिक रूप हमारे सामने आ रहा है उसका बच्चों तक पहुँचना समस्या भी है, जरूरी भी है। साथ ही बच्चों को भारतीया, संस्कृति और समाज से जोड़ने में भी बाल साहित्य की भूमिका है। मुझे लगता है कि आज बाल साहित्यकार का दायित्व, बच्चों के चारों ओर फैल रही उपभोक्तावाद की विषैली अमरबेल के खतरों के प्रति सावधान करना है। आज के बाल साहित्य में युगानुरूप बदलाव अनिवार्य है। वे दरअसल आज के इस विषैले माहौल से बचने के रास्ते तलाश कर रहे हैं। उन्हें तलाश है ऐसे शस्त्रों की जिनके बल पर वे भविष्य में, समाज की विकृतियों और विषैलेपन का विनाश कर सकें। बाल साहित्यकार ही है जो अपनी सशक्त रचनाओं से बच्चों में नई चेतना, नई स्फूर्ति ला सकता है और सूचना प्रौद्योगिकी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के विषैले दुष्प्रयोग के प्रति सावधान कर सकता है। इस अवसर पर कथाकार **मृदुला गर्ग** ने कहा कि हिन्दी बाल साहित्य को वैश्विक रूप से समृद्ध बनाने की आवश्यकता है ताकि वह विदेशों में रह रहे हिन्दीभाषी बच्चों की भाषायी समस्या का समाधान कर सके। अन्य वक्ताओं में बालशौरि रेड्डी, सुश्री स्मिता चतुर्वेदी, सुशील गुप्ता, श्री शमशेर अहमद खान आदि ने भी बाल साहित्य के महत्त्व को संक्षेप में रेखांकित किया। इस अवसर पर अन्य देशों से आए हिन्दीभाषी लेखकों ने विचार-विमर्श भी किया और नये वैश्विक बाल साहित्य की सम्भावनाएँ क्या हो सकती हैं, यह जानने का प्रयास किया।

नवसाक्षर लेखन

दुष्यन्त कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय एवं राज्य संसाधन केन्द्र के सहयोग से नेशनल बुक ट्रस्ट (इण्डिया) दिल्ली की पचासवीं वर्षगाँठ के अवसर पर 14 एवं 15 जुलाई 2007 को दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हिन्दी भवन, भोपाल में किया गया। नेशनल बुक ट्रस्ट के प्रौढ़ शिक्षा के सहायक सम्पादक श्री ललित किशोर मंडोरा ने इस आयोजन के महत्त्व के बारे में बताया। राज्य संसाधन केन्द्र के अध्यक्ष एवं कुलाधिपति श्री संतोष चौबे ने कहा कि साहित्य जगत में समाज के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श करते समय हमें नवसाक्षर लोगों के लिए भी ऐसी ज्ञानवर्धक और कल्याणकारी साहित्य के सृजन पर विचार करना चाहिए जो समाज को दिशा दे सके और नवसाक्षर जीवन के चुनौतियों का सामना कर सके।

मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित प्रसार भारती बोर्ड के सदस्य डॉ० सुनील कपूर ने कहा कि आकाशवाणी और दूरदर्शन समाज में प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अग्रणी हैं और उनके माध्यम से नवसाक्षरों के लिए सरल और सहज भाषा में रुचिकर कार्यक्रम इसी दिशा में अधिक-से-अधिक से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ये माध्यम समाज को दिशा देने में सक्षम हैं।

म०प्र० विधानसभा के प्रमुख डॉ० आनन्द पयासी ने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा कि हमारी लोकसंस्कृति में भी संतों द्वारा समाज के कल्याण हेतु अपनी वाणी में सहज अभिव्यक्ति दी है। उनकी प्रेरणा से हमें भी नवसाक्षरों के लिए सरल भाषा में समाज के हित के लिए साहित्य की रचना करनी चाहिए।

हिन्दी में रूपान्तरित
'रंभा शुक संवाद' का लोकार्पण

गत 21 जुलाई 2007 को कवि ईश्वरीदत्त शर्मा रचित गढ़वाली काव्य कृति 'रंभा शुक संवाद' के हिन्दी रूपान्तर का लोकार्पण देहरादून के मधुवन में आयोजित एक समारोह में साहित्यचेता तथा देश के वयोवृद्ध राजनीति मनीषी **श्री नारायणदत्त तिवारी** ने किया। इस कृति का रूपान्तर मुक्त छन्द में **डॉ० गिरिजाशंकर त्रिवेदी** ने किया है। अपने वक्तव्य में श्री तिवारी ने कहा कि इस महान् कार्य से मूल्यवान, किन्तु लुप्तप्राय गढ़वाली पुस्तक के रचनाकार को एक ओर पुन: प्रतिष्ठापित किया गया है, दूसरी ओर उच्च कोटि के रूपान्तर से चारुता के साथ कृति में नई जान पड़ गई है। श्री तिवारी ने कहा राग-विराग, अनुरक्ति-विरक्ति तथा कामासक्ति और रामासक्ति को निदर्शित करती यह कृति विश्व स्तर की प्रमाणित हो सकती है, बशर्ते इसका अंग्रेजी में भी अनुवाद हो जाए। उन्होंने कृति के विषय पर विवेचनात्मक टिप्पणियाँ करते हुए एक ओर महाभारत और श्रीमद्‌भागवत महापुराण, दूसरी ओर शेक्सपियर के एंटोनी क्ल्योपेट्रा तथा हेमलेट के साथ लियोनार्ड द विंशी और एतिनियो पिरामिड सहित मोनालिसा की प्रतिमा से बिखरती सौन्दर्य की रहस्यमयी मुस्कान की चर्चा की। उन्होंने शाहजहाँ और मुमताज महल के प्यार के प्रतीक ताजमहल को भी अपने वक्तव्य में समाहित करते हुए कहा कि वह किसी कामुकता का प्रतीक न होकर सौन्दर्य और विचार का प्रतिनिधित्व करता है।

अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में अवध तथा गढ़वाल विश्वविद्यालयों के पूर्व कुलपति **प्रो० के०पी० नौटियाल** ने कहा कि डॉ० त्रिवेदी ने 'रंभा शुक संवाद' का जिस कवित्वमयी शैली में रूपान्तर किया है, वह इतना मनोरम और स्तरीय है कि प्रसाद, पंत व महादेवी की शैली का स्मरण करा देता है। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने रूपान्तर के अनेक अंशों का वाचन किया।

डॉ० वासंती मठपाल ने कहा कि डॉ० त्रिवेदी की भाषा पर तो सिद्धि है, शब्द चयन गजब का जो इस घोर शृंगारिक रचना को गरिमामय शालीनता देता है।

कार्यक्रम की संचालिका **डॉ० विद्यासिंह** ने 'कामायनी' और 'उर्वशी' की उक्तियों को उद्धृत करते हुए लोकार्पण को आद्यंत साहित्यिक सौष्ठव से सजाए रखा।

महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा
प्रेमचंद संगोष्ठी

प्रेमचंद की 128वीं जयन्ती पर आयोजित संगोष्ठी में मुख्य वक्ता **प्रो० नन्दकिशोर** ने कहा—आत्मानुभूति से ही साहित्य की प्रक्रिया शुरू होती है और यह आत्मानुभूति अध्यात्म की प्रक्रिया है अन्य को अपने जैसा समझना। प्रेमचंद मूलत: अध्यात्मवादी प्रगतिशीलता के विचारक थे। प्रेमचंद का साहित्य अध्यात्म बनाम संवेदनात्मक पक्ष को प्रस्तुत करता है। साहित्य एक तरह का संवेदनात्मक सत्याग्रह है, वह पाठक की भावनाओं को विचलित कर अकुलाहट उत्पन्न करता है। साहित्य विद्यापीठ के **डॉ० हनुमान प्रसाद शुक्ल** ने अपने प्रास्ताविक में कहा कि प्रेमचंद एक मनुष्यतावादी रचनाकार थे। उनके साहित्य में

किसान आन्दोलन की गहरी पृष्ठभूमि दिखायी देती है। 'प्रेमचंद की दलित चिंता' विषय पर **श्री संदीप सपकाले** ने एवं **शैलेष कदम मर्जी** और छात्र **गुणचन्द्र सिंह** ने ''21वीं सदी में खेत खलिहान और किसान : प्रेमचंद का संदर्भ'' विषय पर अपने विचार रखे।

द्वितीय सत्र में मुख्य वक्ता **प्रो० पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'** ने कहा—प्रेमचंद के विचारों से सिद्धान्त निकलते हैं, वे सृजनात्मक भाषा के कथाकार थे। उन्होंने ईदगाह कहानी का विन्यास किया था। वे अस्तित्ववादी सोच रखनेवाले साहित्यकार थे। वे परम्परा के नहीं, भविष्योन्मुख थे।

अनुवाद एवं निर्वचन विद्यापीठ के अध्यक्ष **प्रो० आत्म प्रकाश श्रीवास्तव** ने अपने प्रास्ताविक में कहा कि प्रेमचंद की भाषा के प्रयोग में मजबूत पकड़ थी। प्रेमचंद ने उर्दू की ताकत और मुहावरों को पहचान कर उसका यथोचित प्रयोग हिन्दी में किया। शान्ति एवं अहिंसा के व्याख्याता **राकेश मिश्र** ने 'लेखक के लिखने का कारण : प्रेमचंद का सन्दर्भ' तथा 'क्यों पढ़ा जाये प्रेमचंद को' विषय पर छात्र **कालुलाल कुलमी** और **अर्चना पांड्या** ने 'प्रेमचंद की रचना शैली' विषय पर अपने विचार रखे।

संगोष्ठी में विश्वविद्यालय के पदाधिकारी एवं विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राएँ आदि बड़ी संख्या में उपस्थित थे।

एकाग्रता का सुफल

विश्वविख्यात दार्शनिक रूसो अपने जीवनयापन के लिए एक धनी व्यक्ति के यहाँ कार्य करते थे। जिस परिवार में वह कार्य करते थे, वह उनकी विद्वता से परिचित नहीं था। वे लोग उन्हें साधारण व्यक्ति ही मानते थे। एक दिन उस धनिक व्यक्ति ने शहर के कुछ संभ्रांत लोगों को अपने यहाँ भोजन पर बुलाया। बातचीत के दौरान शिक्षकों व लेखकों के बीच विवाद हो गया। वे पुराने साहित्य का उदाहरण देकर अपने पक्ष को रखने लगे। दूसरा पक्ष उन्हें नकारने पर आमादा हो गया। रूसो ने विवाद बढ़ता देखा, तो विनम्रता से कहा, ''अमुक लेखक ने अपने ग्रन्थ में यह लिखा है।'' ग्रन्थ मँगाया गया, तो रूसो का उदाहरण सही पाया गया। सभी एक साधारण कर्मचारी का ज्ञान देखकर दंग रह गए। उनसे पूछा गया, ''तुमने किस विद्यालय में रहकर शिक्षा प्राप्त की है?''

रूसो का उत्तर था, ''मैंने अभावों में रहकर एकांतरूपी पाठशाला में एकाग्रता के साथ गहन अध्ययन किया है।''

उस दिन यह रहस्य सबके सामने खुल गया कि रूसो एक साधारण व्यक्ति नहीं, अपितु महान अध्येता और विद्वान हैं।

—शिवकुमार गोयल

नामवर की धरती

लेखक : श्रीप्रकाश शुक्ल
आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा)
मूल्य : 150.00

'नामवर की धरती' पुस्तक यशस्वी कवि श्रीप्रकाश शुक्ल द्वारा समाचार-पत्रों व साहित्यिक पत्रिकाओं में समय-समय पर लिखे लेखों का समुचित विस्तार है। सोलह अध्याय में विभक्त इन निबन्धों के शीर्षक स्वयं नामवर सिंह द्वारा सम्भाषणों में प्रयुक्त काव्य पंक्तियों से लिये गये हैं जो प्रथमत: पाठकों को आकृष्ट करते हैं। नामवर सिंह की धरती 'आलोचना' है, और नामवर जी के सम्पूर्ण 'आलोचक व्यक्तित्व' को रेखांकित करना श्रीप्रकाश जी जैसे सजग, जिज्ञासु व चिन्तनशील पाठक के ही वश की बात है। नि:सन्देह यह पुस्तक नामवर जी के सकारात्मक व युगोपयोगी विमर्शों का दर्पण है, जिसमें त्याज्य तत्त्वों का अनदेखापन है और उनके आलोचकों को ठेंगे पर रखने का भाव भी।

लेखक ने नामवर सिंह को तो पूरा पढ़ा ही नहीं है, उनके आलोचकों व प्रशंसकों को भी खूब पढ़ा है, किन्तु इस पढ़ने का मूल भाव नामवर सिंह को एक 'अभिभावक' के रूप में देखना भी रहा है (हालांकि ऐसा भाव रखने वालों की संख्या बहुत अधिक है), शायद इसी कारण श्रीप्रकाश जी की यह पुस्तक 'आलोचना' कम लगती है, हल्के विमर्शों के साथ-साथ 'सम्पूर्ण रूप से देखने की यह कला' अभिभावकवाद तो नहीं, लेकिन नवयुवा लेखक आशीष त्रिपाठी के शब्दों में 'स्वीकार या समर्थन की अभिव्यक्ति' अवश्य है। पुस्तक में अनेक स्थानों पर नामवर जी के विचारों से असहमति को श्रीप्रकाश जी ने बारीक हुनर से दर्ज तो किया है लेकिन उसके प्रेक्षण-प्रभाव को हल्का करते हुए विस्तार से विषयान्तर व 'पोर्ट्रेट' को सकारात्मकता प्रदान करने की बेहतर चालाकी की है। नामवर सिंह जी इधर (कुछ वर्षों से) काशी के अधिक ही हो गये हैं, अब तो काशीनाथ के अस्सी के भी हो गये। लेखक स्वयं जानते हैं कि उनके ज्ञान, अध्ययन, परिचय व ख्याति का दायरा बहुत व्यापक है, फिर भी इस पुस्तक में तथ्य ग्रहण के दौरान ज्यादातर व्यक्ति-विशेष के लिए उनके द्वारा लिखे पत्रों का जिक्र, काशी में बोले-लिखे व विवादों-संवादों में घिरे उद्धरणों से पुस्तक अपने शीर्षक का एक और अर्थ ग्रहण करती है—'नामवर की धरती काशी।'

यह पुस्तक एक विराट मेधा व व्यक्तित्व वाले साहित्य शिखर का सार रूप ही नहीं, मूल रूप भी प्रस्तुत करती है। नामवर जी का आज और कल तो है ही, उनके द्वारा आने वाले समय को दिया हुआ शाश्वत उपयोगी साहित्य-दर्शन भी इस पुस्तक में भरा पड़ा है। पुस्तक श्रीप्रकाश जी के कवि मन को भी व्यक्त करती है, मसलन—प्रथम लेख में वाक्यों द्वारा नामवर जी का चित्रांकन—''.....वे हिन्दी आलोचना के अकूत वैभव हैं। वे हिन्दी के स्वयंभू हैं। इनकी हर अदा अनोखी है। मुसकान ऐसी कि पार पाना कठिन है कि किस पर और किस लिए। लोगों ने औरों में 'बाँकी चितवन' देखा है। नामवर में 'बाँकी मुसकान' है। वे जिसके सामने होते हैं उसी के लगते हैं। कैमरे के सामने होते हैं तो श्रोता गोल। श्रोता के सामने होते हैं तो कैमरा गोल।'' जैसे नामवर जी सामने हैं।

अभिनव भारती

हजारीप्रसाद द्विवेदी विशेषांक
हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की वार्षिक शोध पत्रिका

सम्पादक : **अजय बिसारिया**

हिन्दी साहित्य के पाठकों से अपने लिए संसाधनों व ख्याति हेतु उत्खननरत, हजारीप्रसाद द्विवेदी के तथाकथित (स्वकथित) प्रेमी साहित्यकारों को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से प्रकाशित यह विशेषांक 'विचलित' करेगा। विशेषकर काशी में अनेक बार कई मंचों से इस तरह के प्रकाशन-आयोजन की चर्चा हुई, लेकिन तथाकथित हजारीप्रसादवादी लेखकों को राजनीति से फुर्सत मिले तब तो। बहरहाल आचार्य द्विवेदी के जन्मशताब्दी वर्ष में प्रकाशित यह विशेषांक 'हिन्दी साहित्य और भारतीय समाज व संस्कृति को द्विवेदीजी के योगदान' को विस्तृत रेखांकित करता है। विशेषांक का सम्पादन कार्य डॉ० प्रदीप सक्सेना ने अजय बिसारिया को सौंपकर यथेष्ट दृष्टि का परिचय दिया। श्री बिसारिया ने अपने सम्पादकीय में आचार्य द्विवेदी को संक्रान्तिकालीन अवस्था में सजग रहकर परम्परा और आधुनिकता के बीच तालमेल बिठाने वाला चिन्तक माना है। बलराज साहनी, मनोहर श्याम जोशी, विश्वनाथ त्रिपाठी, कमलेश्वर, रमेश कुमार, ए० अरविंदाक्षन, आशुतोष कुमार, चमनलाल, राजीवलोचननाथ शुक्ल, वेदप्रकाश, आरिफ़ नजीर, भरत सिंह, तस्नीम सुहेल, मधुरेश, आशिक बालौत, मेराज अहमद और रमेश कुंतल मेघ के महत्त्वपूर्ण लेखों व संस्मरणों ने इस आयोजन को ऊँचाई दी है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे पत्र के माध्यम से अपने बारे में बताना हो या अपने छद्म नाम 'व्योमकेश शास्त्री' के तरफ से खुद के रचनाकर्म पर टिप्पणी करना हो, आचार्य द्विवेदी को फिर से पाठकों के सम्मुख जीवंत कर देता है यह सम्पादकीय सामग्री-चयन। 'भारतीय संस्कृति परम्परा और समाजवादी भविष्य' शीर्षक से लिया गया आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का दुर्लभ लेख विशेष उपलब्धि है। 290 पृष्ठ की यह शोध पत्रिका संग्रहणीय है।

पुस्तक समीक्षा

प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास

डॉ० (सुश्री) शरद सिंह

प्रथम संस्करण : 2007
विश्वविद्यालय प्रकाशन,
वाराणसी
मूल्य : 280.00

प्राचीन भारत की संस्कृति का निरन्तर प्रवाह एवं सार्वभौम दृष्टि तथा आर्थिक समृद्धि सदैव ही वैश्विक जिज्ञासा का विषय रही है। प्राचीन भारत में समाज की अवधारणा, समाज एवं परिवार का स्वरूप, आश्रम व्यवस्था—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अवधारणा, वर्ण एवं जाति व्यवस्था, दास प्रथा, स्त्रियों की स्थिति, स्त्रियों के अधिकार, पर्दा प्रथा, शूद्रों की स्थिति व अस्पृश्यता, संस्कार, शिक्षा पद्धति, नैतिकता आदि का ज्ञान वर्तमान में जीवन के मूल्यों को स्थापित करने में आधारभूत स्रोत की भूमिका निभाता है। फलस्वरूप आज का व्यक्ति बार-बार अतीत के पन्ने पलटता है। अतीत की इसी अध्ययन-यात्रा में डॉ० शरद सिंह की यह पुस्तक प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। पुस्तक का कलेवर दो खण्डों में विभक्त है—सामाजिक इतिहास तथा आर्थिक इतिहास। इन दोनों खण्डों में पुरापाषाणकाल से गुप्तोत्तर काल तक की सामाजिक एवं आर्थिक अवस्थाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट के रूप में प्राचीन भारत में उपभोक्ता संरक्षण एवं जल संरक्षण के प्रति जागरूकता की जानकारी दी गयी है।

पुस्तक की लेखिका डॉ० शरद सिंह एक विदुषी इतिहासकार एवं साहित्यकार हैं। इतिहास एवं साहित्य विषयक इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में लेखिका ने विषयवस्तु को इतनी सहज एवं बोधगम्य भाषा-शैली में पिरोया है कि यह पुस्तक निश्चित रूप से प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के विद्यार्थियों, शोधार्थियों के साथ ही अन्य पाठकों को भी रुचिकर लगेगी।

—प्रो० मारुतिनन्दनप्रसाद तिवारी
पूर्व विभागाध्यक्ष,
कला-इतिहास विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख भाग-1

डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त

पंचम संस्करण : 2007
ISBN : 978-81-7124-572-7
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
मूल्य : 150.00

इस संग्रह में न केवल अभिलेखों का मूल संगृहीत है, वरन् उनके साथ उनका अनुवाद भी सूचनात्मक टिप्पणियों के साथ है। संग्रह में अशोक के प्राय: सभी तथा मार्योत्तर-काल से गुप्त-पूर्व काल तक के चुने हुए 41 अभिलेख हैं। इनके अतिरिक्त शक और कुषाण शासकों से सम्बद्ध चार अभिलेख भी दिए गए हैं। अभिलेखों पर विचार करते समय मुद्रा तात्विक सामग्री का भी यत्र-तत्र उपयोग किया गया है।

सामाजिक परिवर्तन में कला एवं साहित्य

डॉ० जुगनू पाण्डेय

प्रथम संस्करण : 2007
ISBN : 978-81-7124-574-1
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
मूल्य : 180.00

कला एवं साहित्य में समाज प्रतिबिम्बित होता है। काव्य, कथा, नाटक, दर्शन, चित्र, वास्तु, नृत्य, संगीत उसकी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। इन रचनाओं पर समस्त सामाजिक तत्त्वों, समकालीन परम्पराओं, सभ्यता, संस्कृति तथा परिस्थितियों का प्रभाव अचेतन रूप से पड़ता है। रचनाकार अपनी रचनात्मक संवेदना में सम्पूर्ण समाज को अभिव्यक्त करता है। साहित्यकार की रचना की पृष्ठभूमि में सामूहिक चेतना प्रतिबिम्बित होती है। कबीर, तुलसी, प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, रवि वर्मा जैसे कलाकारों ने समाज को नेतृत्व प्रदान किया। कलाकार देश तथा समाज का संवेदनशील ग्रहणकर्त्ता होता है। वह अपने युग की वाणी होता है। वह अतीत और वर्तमान में सेतु स्थापित कर देश के इतिहास और समाज को एक दूसरे से जोड़ता हुआ विकास के नये कीर्तिमान स्थापित करने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार नित्य परिवर्तनशील समाज में कला एवं साहित्य का विशिष्ट योगदान होता है।

साहित्यकार अपनी साहित्यिक रचनाओं यथा काव्य, कथा, दर्शन, चित्रकार अपने रेखांकन और चित्रांकन, शिल्पी अपने विभिन्न कलात्मक शिल्प द्वारा, सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरित करता हुआ निरन्तर विकास की ओर अग्रसर करता है। कला एवं साहित्य अपनी विभिन्न अभिव्यक्तियों के माध्यम से समाज के प्रगतिशील परिवर्तन की प्रेरणा देते हैं। इसी से जीवंत समाज की पहचान बनती है।

कला एवं साहित्य में सामाजिक परिवर्तन के विविध आयामों को इस ग्रन्थ में प्रस्तुत करने का प्रयास है।

गुणीभूतव्यङ्ग्य का सिद्धान्त और बृहत्त्रयी में उसका प्रयोग

डॉ० नन्दिता श्रीवास्तव

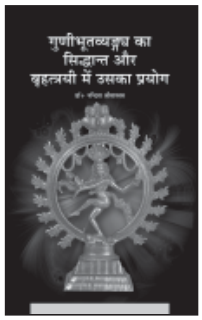

प्रथम संस्करण : 2007
ISBN : 978-81-7124-577-2
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
मूल्य : 250.00

संस्कृत काव्य-शास्त्रीय जगत में आचार्य आनन्दवर्धन ने पूर्ववर्ती आलङ्कारिकों के भिन्न सर्वथा नवीन ध्वनि-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, जिसमें व्यङ्ग्यार्थ को काव्य के आत्मभूत-तत्त्व के रूप में प्रतिपादित किया गया है। आचार्य मम्मट एवं मम्मटोत्तर युगीन आलङ्कारिकों ने आचार्य आनन्दवर्धन के मत का ही अनुकरण किया है। अत: प्रस्तुत ग्रन्थ में आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्यविधा का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए मम्मट एवं उनके परवर्ती आलङ्कारिकों के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया है। आनन्दवर्धन ने इस काव्यविधा को गुणीभूतव्यङ्ग्य नाम केवल अवान्तर-व्यङ्ग्य की गौणता की दृष्टि से दिया है। इसमें एक मध्यवर्ती व्यङ्ग्य वाच्य का उपस्कारक होने के कारण गौण हो जाता है, वाच्य प्रधान होता है। अन्तत: इस काव्यविधा का पर्यवसान भी रसध्वनि में ही होता है।

ध्वनि का निष्यन्द रूप यह काव्य अत्यन्त रमणीय एवं महाकवियों की रचना का उत्तम विषय होता है फिर भी विचारकों द्वारा इस काव्य-भेद को मध्यम-संज्ञा प्रदान करके उपेक्षा का व्यवहार किया गया है। अत: प्रस्तुत ग्रन्थ में गुणीभूतव्यङ्ग्य नामक काव्यविधा के सिद्धान्त एवं स्वरूप को प्रकाशित करने के अनन्तर बृहत्त्रयी संज्ञक महाकाव्यों—किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् एवं नैषधीयचरितम् में गुणीभूतव्यङ्ग्य के सुन्दर स्थलों पर प्रकाश डालकर इस काव्यविधा के महत्त्व को प्रदर्शित किया गया है। काव्यसुधी जनों के समक्ष यह ग्रन्थ अपने गुण-दोषों के साथ प्रस्तुत है।

संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी स्वीकार करने का प्रस्ताव मारीशस द्वारा रखा गया।

आर्ष-सुभाषित-साहस्री : प्रणेता : रामजी उपाध्याय, प्रकाशक : भारतीय संस्कृति संस्थानम्, वाराणसी, मूल्य : 100.00

प्राचीन भारतीय ऋषियों द्वारा प्रदत्त आदर्श जीवन पद्धति के निर्माण को आर्ष-संस्कृति माना जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में पूर्वोक्त ऋषियों के अतिरिक्त विश्वविश्रुत सम्राट अशोक के शिलालेखों से सुभाषितों का चयन किया गया है। चारित्रिक पतन के युग में ये (हिन्दी व अंग्रेजी में भावार्थ विवरण सहित) सुभाषित आधुनिक पीढ़ी का मार्गदर्शन करने में सक्षम हैं। यह ग्रन्थ भारत के विशाल प्राचीन आर्ष साहित्य से परिचय तो कराता ही है, अपने तार्किक व विमर्शपूर्ण उद्धरणों से लोकमंगल हेतु महान अभिसिंचन का स्रोत भी खोलता है। आर्ष-संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान प्रो० रामजी उपाध्याय की यह देन महत्त्वपूर्ण है।

कम्प्यूटर तत्व : प्रो० अरुणकुमार अग्रवाल, प्रकाशक : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रकाशन कक्ष, वाराणसी, मूल्य : 225.00

अपनी पूर्व पुस्तक 'कम्प्यूटर प्रवेशिका' के लिए भारत सरकार द्वारा 1990 में 'कम्प्यूटर तत्व' विद्यार्थियों और जिज्ञासुओं के लिए बहुत ही उपयोगी है। आज के कम्प्यूटर युग में हिन्दी भाषा में कम्प्यूटर-ज्ञान का बहुधा अभाव है। बहुत ही सरल भाषा में इन्होंने, आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेजी तकनीकी शब्दों का प्रयोग करते हुए, एक कठिन विषय को जन सुलभ बनाने का यह प्रयास सराहनीय है। यह पुस्तक सभी हिन्दीभाषियों को कम्प्यूटर की प्रारम्भिक जानकारी देने हेतु सक्षम है।

पुस्तकें-पत्रिकाएँ प्राप्त

दिव्य-प्रतीक : आचार्य कल्याणमल लोढ़ा, प्रकाशक : विश्वविद्यालय वाग्धारा, आई०ए०एस०ई० विश्वविद्यालय, गाँधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर (राजस्थान), मूल्य : 100.00

द मन : सरश्री, प्रकाशक : तेज ज्ञान फाउण्डेशन, पुणे (महाराष्ट्र), मूल्य : 125.00

वसुधा-73 : प्रधान सम्पादक : कमला प्रसाद, प्रकाशक : प्रगतिशील लेखक संघ, भोपाल, मूल्य : 50.00

संवेद वाराणसी (जुलाई-सितम्बर 2007) : सम्पादक : कमला प्रसाद मिश्र, गणेशधाम कालोनी, नेवादा, सुन्दरपुर, वाराणसी, मूल्य : 40.00

अभिनव कदम (अंक-15) : प्रधान सम्पादक : चन्द्रदेव राय, निजामुद्दीनपुरा, मऊनाथभंजन, मऊ (उ०प्र०), मूल्य : 30.00

साखी (जनवरी-जून, 2007) : प्रधान सम्पादक : केदारनाथ सिंह, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, बेतियाहाता, गोरखपुर, मूल्य : 30.00

परस्पर : सम्पादक : आनन्द बहादुर, प्रकाशक : सरगुजा हिन्दी साहित्य परिषद, अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़), मूल्य : 15.00

वाक (आलोचना की नई पत्रिका) : सम्पादक : सुधीश पचौरी, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, मूल्य : 50.00

मीडिया विमर्श (त्रैमासिक) : अंक-जून से अगस्त, सम्पादक : डॉ० श्रीकान्त सिंह, रायपुर से प्रकाशित, मूल्य : 25.00

साहित्य अमृत (स्वाधीनता विशेषांक) : सम्पादक : डॉ० लक्ष्मीमल सिंघवी, मूल्य : 30.00

साहित्य अमृत (विश्व हिन्दी विशेषांक) : सम्पादक : सर्वमित्रा सुरजन, प्रकाशक : देशबन्धु प्रकाशन विभाग, रायपुर, मूल्य : 30.00

संचेतना (पूर्णांक-180) : सम्पादक : महीप सिंह, मूल्य : 15.00

साहित्य परिक्रमा (स्वतंत्रता संग्राम स्मृति) : सम्पादक : मुरारी लाल गुप्त 'गीतेश', प्रकाशक : अखिल भारतीय साहित्य परिषद न्यास, ग्वालियर, मूल्य : 15.00

सिद्धपीठ कबीरचौरा (स्मारिका) : सम्पादक : कृष्ण कल्कि, राम मुरारी, प्रकाशक : कबीरवाणी प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी, मूल्य : 150.00

कला समय (संयुक्तांक : फरवरी से मई 2007) : भारत भवन, भोपाल के रजत जयंती वर्ष पर एकाग्र विशेषांक, सम्पादक : भँवरलाल श्रीवास, मूल्य : 50.00

भारतीय वाङ्मय

मासिक

वर्ष : 8 **सितम्बर 2007** **अंक : 9**

प्रधान संपादक

पुरुषोत्तमदास मोदी

संपादक : **परागकुमार मोदी**

वार्षिक शुल्क : रु० 50.00

अनुरागकुमार मोदी

द्वारा

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

के लिए प्रकाशित

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

वाराणसी *द्वारा मुद्रित*

डाक रजिस्टर्ड नं० ए डी-174/2003 RNI No. UPHIN/2000/10104

प्रेस रजिस्ट्रेशन एक्ट 1807 ई० धारा 5 के अन्तर्गत

Licenced to post without prepayment at

G.P.O. Varanasi

Licence No. LWP-VSI-01/2001

सेवा में,

प्रेषक : (If undelivered please return to :)

☎ : Offi. : (0542) 2421472, 2413741, 2413082, (Resi.) 2436349, 2436498, 2311423 ● Fax : (0542) 2413082

E-mail : sales@vvpbooks.com ● Website : **www.vvpbooks.com**

विश्वविद्यालय प्रकाशन

प्रमुख प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

(विविध विषयों की हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी पुस्तकों का विशाल संग्रह)

विशालाक्षी भवन, पो०बाक्स 1149

चौक, वाराणसी-221 001 (उ०प्र०) (भारत)

VISHWAVIDYALAYA PRAKASHAN

Premier Publisher & Bookseller

(BOOKS IN HINDI, SANSKRIT & ENGLISH FOR STUDENTS, SCHOLARS, ACADEMICIANS & LIBRARIAN)

Vishalakshi Building, P.O. Box : 1149

Chowk, VARANASI-221 001(U.P.) (INDIA)